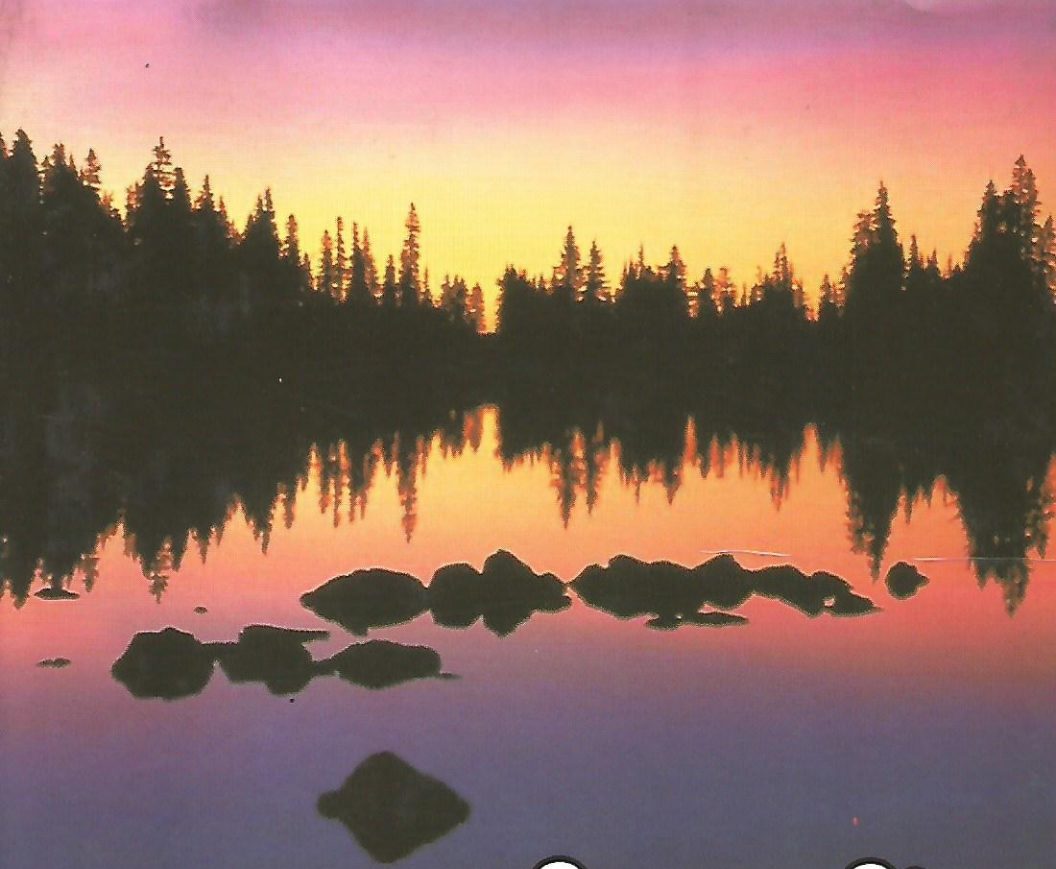

सूखती नहीं वह नदी

शान्ति सुमन

शांति सुमन की कविताओं के नये संग्रह—**'सूखती नहीं वह नदी'**—से गुजरते हुए महसूस किया जा सकता है कि इसमें सचमुच एक नदी प्रवहमान है। भावना और संवेदना, नमी और तरलता, आत्मीयता और कोमलता तथा राग और स्मृति की नदी। इन कविताओं में संबंधों का एक रागात्मक लगाव है—अलगाव के विरुद्ध। दादी, माँ, बेटी, बेटा आदि ही नहीं, पीपल के पत्ते का भी अपनी शाख से अलग होना कवयित्री में कम्पन पैदा करता है। कोई एक सूत्र है जो उसे गाँव और अपने उस बहुरंगी, बहुरूपी प्राकृतिक परिवेश से जोड़े रहता है जिसमें वसंत है, बरखा है, शिशिर और हेमंत है, अलग-अलग ऋतुओं में मौसम का मिजाज है। इन कविताओं में गाँव की छौंक मात्र नहीं है बल्कि उसकी सूमची प्राणधारा है—सड़कों, स्थानों, फसलों, शाक-सब्जियों तथा पर्व-त्योहारों के नामों तक के साथ। किसी ग्रामीण पृष्ठभूमि का कवि ही लिख सकता है ऐसी कविताएँ जो अपने अंचल की शब्दावली में पूरी तरह रचा-बसा हो। ऐसा अनुभव कवि की निजता और वैयक्तिकता में ही प्राप्त

सूखती नहीं वह नदी

शान्ति सुमन

किताब पब्लिकेशन

मूल्य	:	125 रुपये
©	:	लेखकाधीन
प्रथम संस्करण	:	2009
प्रकाशक	:	किताब पब्लिकेशन
कार्यालय	:	हाजीपुर रोड, मुजफ्फरपुर - 842002
दिल्ली सम्पर्क	:	जी.-72, गंगा विहार, गोकुलपुरी, दिल्ली - 110094
अक्षर-संयोजन	:	अजीत कुमार वर्मा
आवरण	:	पिंटू
मुद्रक	:	बी० के० ऑफसेट, दिल्ली - 32

SUKHTEE NAHIN WAH NADEE

By **Shanti Suman**

आरंभिक / समय में रचनात्मक हस्तक्षेप

जानी-पहचानी कवयित्री **शांति सुमन** की पहचान प्रायः गीतकार या नवगीतकार के रूप में रही है। समय का दबाव ऐसा कि आज वे गद्य-लय में काव्य-सृजन कर रही हैं और **'सूखती नहीं वह नदी'** संग्रह से यही नई पहचान संभव हो सकी है और विकसित भी। गाँव-शहर के सीमान्त पर शांति सुमन ने 'पेड़ों की शक्ल में लोग', 'रोटी के पेड़', 'नई बात नहीं', 'किशोरी अमोनकर को गाते हुए देखकर' जैसी कविताएँ लिखी हैं जो समय में रचनात्मक हस्तक्षेप के मानिन्द हैं।

शांति सुमन संवेदनशील कवि हैं और सम्बन्धों का राग पहचानती हैं। उनके लिए 'चिड़िया' कभी माँ हो जाती है, कभी 'दियारे से शहर तक' का लैण्डस्केप सादगी में चकित करता है। चिमनियों से भरे शहर का धूल-धुआँ शांति सुमन के काव्य-समय में वर्जित नहीं है। 'पतझड़ में' कविता में पेड़ पत्तों से वंचित होते हैं, पर ऑफिसर्स फ्लैट में टाइल्स की चमक बढ़ती जाती है। आउटहाउस के बच्चे और उनके मज़दूर पिता सभ्यता की अंधी दौड़ में शामिल हो जाना चाहते हैं।

शांति सुमन पठन के संस्कार के चलते 'टेनीसन' की कविता से रू-ब-रू होती हैं और वसंत-दर्शन कवयित्री का अपना अनुभव बन जाता है। वसंत-लदे खेत में कविता आश्चर्य हो सकती है और प्रीतिकर अनुभव भी। सुशांत की स्मृति-शृंखला में एक-दो कविताएँ करुणा का विस्तार करती हैं और निजी क्षति के एहसास को गहरा कर जाती हैं। मीरा को गाती किशोरी अमोनकर मीरा से आगे चली जाती हैं। किशोरी अमोनकर गाती हैं तो शृंगारी वैराग्य को छंद मिलता है। कवयित्री का सवाल है—'इतनी अतल होगी क्या कोई भी नदी/ जहाँ से निकलते हैं तुम्हारे/वैरागी ताल/ संगीत का जलता ज्योतिपिंड बन जाती है/ तुम्हारे माथे पर लगी लाल बिन्दी/ साजन आओ म्हारे देश गाती हुई/ नही लगता तुमको / कि तुम्हारे संग-संग गाती हैं मीरा...../'।

'फ़सल की किताब' में स्त्री की आँखों में 'चूल्हे की धौंक दिख जाती है। उसके लहू में अगहनी फसल की फुनगियाँ झलक जाती हैं।' ईटानगर, कमलपुर डुमुरडीहा स्थानवाची नाम भर नहीं है—सफ़र में पड़ाव हैं। बेटे के जन्मदिन पर शांति सुमन की कविता 'सोलह फ़रवरी—तुम्हारे जन्मदिन पर' एक मंगल-कामना है, जिसमें 'चन्दन-तिलकित भाल' जैसे प्रयोग सम्बन्ध की गरमाई का आभास देते हैं। यहाँ भी माँ-बेटे के बीच रोटी आ जाती है। यह कामकाजी दुनिया का सच है। जिस घर-गृहस्थी

में माँ पहले से रमी हुई हैं, नई बहू उनके सारे काम सँभाल लेती है। भाभी के लिए शांति सुमन का सद्भाव औपचारिक नहीं है। 'वे जब झाड़ू पकड़ेंगी/फेकेंगी बुहारन / तो उनके छोटे घर में, पड़ेंगे नहीं जाले / कलश, चौक, आसनी / सब कुछ चमकेंगे / और यह छोटा घर भी।'

शांति सुमन की कुछ कविताएँ आधी-अधूरी कथा लगती हैं। जैसे—'अब माँ नहीं हैं'। 'अब माँ नहीं हैं / और नहीं है वह नदी भी / मटियारी मिट्टी है उसके पेट में / उपजते हैं उसमें—जौ-गेहूं और सरसों / मगर तुम तो कहते थे / कभी सूखती नहीं थी वह नदी / जाने कहाँ से भर जाते थे उसमें अथाह जल....।' कविता का अंत साधारण है, पर स्वप्न-विचार में अभिन्न। 'नहीं टूटेगा पुल' यह स्वर अदम्य आस्था का है। शांति सुमन स्त्रीवादी नहीं हैं, पर स्त्री-उत्पीड़न का सच जानती हैं। 'नयी बात नहीं' में एक स्त्री का शव एक संक्षिप्त त्रासद कविता-कथा है। स्त्री का शव है, तो पुरुष उसमें भी 'देह' देखते हैं। मीडिया के लिए स्त्री का शव ख़बर है। कवयित्री के शब्द हैं—'उसकी आत्मा में ईश्वर नहीं था / उसकी आत्मा तक गया नहीं ईश्वर / वह सिर्फ़ देह थी, देह के साथ रही / देह लेकर मर गयी / मनुष्य होने की आदिम परिभाषा / पर भी पत्थर रख गयी।'

'सूखती नहीं वह नदी' में वैविध्य है और नयी काव्य-संभावना की झलक भी। सरलता है—पर सरलीकरण से बच कर। इस सरल वैविध्य में चुप्पी है, मितकथन की कला भी। प्रकृति और मनुष्य के बीच का अनवरत संवाद प्रीतिकर है। उसे विचारों में रिड्यूस करने का बड़बोलापन नहीं है। **शांति सुमन** नयी खिड़कियाँ खोलती हैं और स्मृति-जीवन में कविता को नयी पहचान देती हैं। **शांति सुमन** की कविता मंथर लय में चलकर जीवन वृत्तान्त बनती है। वे मानेंगी—आगे राहें और हैं। समय इतना सरल नहीं है—वह वैश्वीकरण और बाज़ारवाद की गिरफ़्त में है। बेशुमार चीज़ें कविता को कथा बना रही होंगी। तब कविता भी कुछ और होगी।

—परमानन्द श्रीवास्तव

इस तरह

कविता लिखना भी इतना आसान नहीं होता यदि उसमें शाब्दिक छन्द का पूरा निर्वासन नहीं हो और गद्य-लय भी बनी रहे। जो छन्द शब्दों के अंतर्जगत में होता है, वही कविता में उतरता है। अलग से उसमें मात्राओं का संतुलन नहीं होता। प्रत्येक जागरूक रचनाकार समय में सार्थक रचनात्मक हस्तक्षेप करता है। मेरी कविता भी समय के साथ रचनात्मक भागीदारी की प्रतिश्रुति है।

मैं गीत लिखती रही हूँ। मेरे सात गीत-संग्रह प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त गीतों के तीन सहसंकलन भी। 1994 में 'समय चेतावनी नहीं देता' के नाम से मेरी कविताओं का एक सहसंकलन भी आया। वे गीतों के दिन थे—कभी उजले, कभी कठिन-मलिन भी। गीतों के संग्रहों के साथ कविता-संग्रह के प्रकाशित नहीं होने के कई कारण हो गये। कई बार सम्पादकों-प्रकाशकों ने कविता के बदले मेरे गीत माँगे। कवितायें छपीं भी, पर गीतों की तरह उन पर प्रतिक्रियाएँ खुलकर नहीं आईं। इसलिए यह निर्णय लेने में समय लग गया और इसके पहले मेरा स्वतंत्र कविता-संग्रह नहीं आया।

'समय चेतावनी नहीं देता' में मैंने अपने हिस्से की कविताओं के पूर्व एक छोटी टिप्पणी दी थी। टिप्पणी से अधिक वह आत्मकथ्य था जिसका शीर्षक था—'जिन्दा रहने का सबूत'। मैंने लिखा था—"मेरे गीत हों या कविता, अंतरंगता उसमें आ ही जाती है। मुझको लगता है कि जब आप किसी गीत या कविता को पढ़ते हैं तो आप उस पूरे समाज-संदर्भ को ही पढ़ते हैं। कवि जिन परिस्थितियों को जीता है, कविता में उसके जिये गये अनुभव ही जीते हैं। माँ-पिता, घर-गाँव, सारे सम्बन्धों से होती हुई कविता व्यवस्था के चक्रव्यूह में फँसती है और जिस आत्मीयता से गाँव-घर को बुनती है कविता, उसी तीक्ष्णता से व्यवस्था के घिनौने चेहरे को भी बेनकाब करती है। इस प्रकार अपना जन-पक्ष सिद्ध करती है।

कविता मेरे सामने मनोरंजन का साधन नहीं, अपितु जीवन-संघर्ष के लिये एक पैना औजार है। इसलिये जीवन और समाज के कितने ही उतार-चढ़ाव लेकर आती है वह। संभव है, आप मुझको नहीं जानें और आपको ये कवितायें रोमानी लगें, पर सच्चाई तो यह है कि ये मेरे संघर्ष करते हुए जीवन की कवितायें हैं। इनको मैंने तबसे लिखना शुरू किया जब नवगीत का दौर चल रहा था। कुछ तो अपने स्वाभाविक संकोच और कुछ सम्पादकों की हठधर्मिता के कारण मेरी कवितायें गीतों की तुलना में कम ही प्रकाशित हो सकीं। अब जीवन और समाज के सम्बन्ध, प्रेम और संघर्ष की दुनिया लेकर आई हुई मेरी कुछ कवितायें आपके सामने हैं। इनमें विचार और संवेदना का कोई ईमान

आपको मिले तो इन कविताओं की अंतर्वस्तु सार्थक होगी। अपनी जमीन और जमीर के साथ होने की सूचनायें इनसे मिलें—यही चाहती हूँ। देखिये, कहीं हमारे जिन्दा रहने का सबूत इनमें मिल जाये।''

इस तरह **'सूखती नहीं वह नदी'** मेरी कविताओं का पहला एकल संकलन है। इसमें अस्सी कवितायें हैं। कुछ कवितायें जो श्रोताओं-पाठकों-समीक्षकों को प्रिय हैं, उनमें 'सोलह फरवरी—तुम्हारे जन्म दिन पर', 'फसल की किताब', 'नदी', 'आवाजें', 'पतझड़ में', 'अब माँ नहीं है', 'नहीं टूटेगा पुल', 'रोटी के पेड़', 'पानी के सपने', 'किशोरी अमोनकर को गाते हुए देखकर', 'उन दिनों', 'ऋतुकथा' आदि हैं। कई स्थानों पर 'बची हुई मनुष्यता', 'नयी बात नहीं' और 'नींद में झुकी जा रही लड़की' आदि कविताओं की चर्चा हुई।

मुझको प्रसन्नता है कि इतने लम्बे समय के बाद **'सूखती नहीं वह नदी'** प्रकाशित हो रही है। मेरे अंतर्वाह्य संघर्षों, जीवन की असुविधाओं और व्यवस्था की जटिलताओं ने इन कविताओं को लिखने की जमीन दी है। इन दिनों जमीन का मिलना भी बड़ी बात है। इसी से सम्बन्धों का रागात्मक लगाव मुझमें सघन हुआ है। मेरी संवेदनाओं में गाँव है, इसलिये शहर की चमक इनमें कम है। जहाँ भी शहर हैं, वहाँ अपनी तरह की विसंगतियाँ हैं। उजड़ने के बाद भी गाँव गाँव की तरह लगता है, भीषण बाढ़ के चले जाने बाद बालू उगलते खेत में भी गाँव दीखता है। सरपत का एक भी अँखुआ उगेगा तो फिर कोशी का कछेर हरियाली पहन लेगा। मैं मानती हूँ कि कविता भी बची हुई संवेदना, बचे हुए शब्दों के ईमान से फिर-फिर अपने को रचती है और अपना होना प्रमाणित करती है। तब साधारण जन की साँसें ही कविता का उपकरण बन जाती हैं। कोमलता की, भावना की, संवेदना की नमी को यही कविता बचाती है। इस नमी के कारण ही कविता शब्दों से होकर जनता तक पहुँचती है। वह समय और समाज में रचनात्मक हस्तक्षेप होती है।

मैं सामाजिक सरोकार के संवेदनशील कवि और विद्वान समालोचक डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव का विनम्र आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने **'सूखती नहीं वह नदी'** का आरम्भिक लिखकर मुझको स्नेह और गौरव किया। साथ ही सामाजिक संदर्भों के नितान्त आत्मीय और जनपक्षधर रचनाकार, वरीय आलोचक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के प्रति मेरे मन में अपार कृतज्ञता है जिन्होंने इस कविता-संग्रह का फ्लैप लिखा। अपनी अन्तरंग रचनाएँ—पुत्र अरविन्द, पुत्री कवयित्री चेतना वर्मा, वधू डॉ० विशाखा वर्मा और बच्चे—शालीना-ईशान, अपूर्व-श्रेयसी के लगाव इनमें रचे-बसे हैं।
सम्प्रति 'कविता के कुछ और होने' की प्रतीक्षा में—

—शांति सुमन

मीठनपुरा, क्लब रोड,
भी.सी. गली, रमना, मुजफ्फरपुर
29-3-'09
मो० : 9430917356

डॉ० शिवकुमार मिश्र,

डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह,

डॉ० मैनेजर पाण्डेय,

डॉ० रेवतीरमण

एवं

नचिकेता

को

अनुक्रम

सोलह फरवरी—तुम्हारे जन्म-दिन पर	11	कौंधता हुआ घोंसला	62
बची हुई मनुष्यता	13	नदी	64
अपनों से अलग	18	साँझ	65
नदी	20	हमारा हरापन	66
आवाजें	22	कहना जरूरी है	67
प्रेमचन्द की कहानी की तरह	24	माँ ने लिखा है	68
पतझड़ में	26	पेड़ों की शक्ल में लोग	69
अब माँ नहीं है	28	जानता है समुद्र	70
नहीं टूटेगा पुल	30	कितने भी चिह्न	71
जिन्दगी से मुठभेड़ करते	32	पृथ्वी से संवाद	72
अभी भी दीखती हैं	34	चूल्हा नहीं जलता	73
दौड़ लगाता बच्चा	36	लालिम पत्ती	75
रोटी के पेड़	37	फिर एक दिन	76
माँ को खत	38	उठता है धुआँ	77
उगी है धूप	39	फूलवाली	79
दिपता हुआ चेहरा	41	हँसी की गूँज	80
देखना जरूरी है	42	इच्छाशक्ति	81
नयी बात नहीं	44	जीने लायक पृथ्वी	82
तुम वही खुशी हो	45	सुगंध सी बेटी	83
धरती का हरापन	47	घास की गंध	85
फसल की किताब	48	बहुत दिनों पर बरखा	86
आँखें बरसात में	49	बथुआ का साग चुनते	88
पढ़ी-लिखी नहीं है बेला	51	गंगाडीह की सड़क पर	90
छोटे-छोटे दुख	53	चिड़ियों को नहीं मालूम	91
उजला भिनसार	54	डुमुरडीहा में	93
रास्ता दिखाया दुर्दिन ने	55	हँसती है रंगोली	95
मद्धिम वसंत	57	भोली लड़की	97
पानी के सपने	58	ऋतु-कथा	98
नींद में झुकी जा रही लड़की	60	रुआँसी है चिड़िया माँ	99

किशोरी अमोनकर को गाते हुए देखकर 100
आवे कुम्हार के 103
उदास है अमलतास 105
एक भीगी मुस्कुराहट 106
हिरन और मछली 108
तुम्हारी मिट्टी 109
बंजर में बीज 110
दियारे से शहर तक 111
आँचल के रंग 112
कोई भी कविता 113
अपना अंधकार 114
चीजों की तरह 115
नई गंध 116
शायद 117
स्वीकार 118
दौड़ लगाता बच्चा 119
उन दिनों गाँव में 120
साफ-सुन्दर दुनिया 122
पिता को खत 124
सबकुछ 126
कोने में पड़ी किताब 127
धन्यवाद 128

सोलह फरवरी–तुम्हारे जन्म दिन पर

इस छोटे शहर की
बड़ी लगनेवाली रात में
जब आती-जाती रोशनी के बीच
अँधेरा और घना हुआ है
बेटे, मुझको तुम्हारे ललाट की
प्रशस्ति और आँखों की चमक
याद आई है
कल तुम्हारे जन्मदिन पर
मन होता है सामने रहे
तुम्हारा चन्दन-तिलकित भाल
अभी-अभी पहनाये हैं
आशीषों के कवच
सिक्त किया है तुमको प्रार्थनाओं
के जल से
पूर्वजों के पुण्यों से माँगा है
तुम्हारे लिये अभय
सब हुआ, सब होगा
मेरे बेटे,
पर कल आनेवाली सोलह फरवरी
फिर फेंक देगी मुझको अपने अँधेरे में
इस छोटे शहर की बड़ी लगनेवाली रात
में उतरेगा तुम्हारा बचपन
तुम्हारी हँसी, तुम्हारी जिद

और मेरा अजस्र प्यार
और तुम चिमनियों भरे शहर
के धूल-धुएँ से लड़ते
पूरी पृथ्वी के लिये उजाला
बो रहे होगे
तुम्हारे माथे पर हाथ रखने की
इच्छा को प्यार करती हुई
तुम्हें दूर से देखूँगी
क्योंकि तुम्हारे और मेरे बीच
रोटी है।

16.2.'85

●

बची हुई मनुष्यता

तुड़े-मुड़े पुआलों के ढेर पर बैठा कातिक पातर
अधनींदी आँखों से देखता है
अपनी बाँहों पर उगी नसों की धारियाँ
इस दलान के बाहर रोता है उसका बचपन
और पलक झपकते उसकी आँखें
मुट्ठियाँ ताने शब्द हो जाती हैं
उसको पता नहीं होता कि इस पूस की धूप में
कितनी है उसके बच्चों की हँसी
और कितने उसकी माँ के आँसू
आज से बीस-पच्चीस बरस पहले ही
जनमने लगे थे आतंक उसकी नींद में
देखा था उसने पुलिस को गश्त लगाते हुए
हलुदबनी की हाट से लौटते हुए
धीरे से हँसा था वह, तीता हो गया था उसका चेहरा
कोई भी आतंक आतंक नहीं हो जाता पहली बार में ही
कई सारी शिकायतों / विद्रूपों के मलवे पर
जन्म लेता है एक आतंक
बेरोजगारों की उम्मीदों और सपनों से
किये गये फरेब और नाउम्मीदी को आदमी की नियति
बना देने की क्रूर साजिशों में
ऐसे दिनों के आने से काँपी जिन्दगी
जब आँखों में आसमान के रंग नहीं आने लगे

हवाओं में उठते हुए हाथ
अनदिख होने लगे
बाँहों को बल देकर मुट्ठियाँ नहीं बँधने लगीं
नहीं करने लगी चिड़िया लोगों की
संवेदनाओं से सीधा संवाद
तपते जेठ में छूटते बिजली के भी पसीने
अपहरण-हत्याकांड से सुर्खियों में आते लोग
शादीशुदा महन्त करते मठों की रखवाली
आजीवन कारावास की सजा या बम से जानलेवा हमला करने
के मामले में भी आदमी बरी हो जाता है
आज तक नहीं आया '99 में अगुवा हुआ छोटेलाल
इधर जलावन बनते जा रहे सूखते गन्ने
गन्ने के साथ जलते किसानों के अरमान
चैन की नींद ले रहे मुखिया, सरपंच
और सरेआम होता आतंकियों का तालिबानी फरमान
घरों के दरवाजे, स्कूलों और गाँवों-शहरों को जाते
रास्तों पर सटे पोस्टर, लूट-पाट, हत्या
उगते रहते हैं जाने कितने कोदाईबाँक
मिट्टी खून से रँग जाती है
कतारों में सो जाते हैं अनिल मरांडी
जेल में होते लाठी-चार्ज, कैदी भूख हड़ताल पर
रास्ते और रंगदारी के विवाद
प्रदर्शन करते लोगों पर पानी की बौछारें
जाने कितने अष्टयाम बच्चों की सलामती के लिये
और लोगों में इस विश्वास के लिये
कि फूटता है पाप का घड़ा एक-न-एक दिन
बार बार बँधती है प्रजा व्यवस्था की जंजीरों से

और कितनी बार नाकाम होती जिन्दगी
कब तक नहीं खुलेंगे विचारों के बन्द दरवाजे
इससे पहले कि खरोंची जाये बच्चों की
हँसी और नींद
माँ की साड़ी में आँसुओं के पेबन्द लगें
जीती रहें शुभकामनायें थोड़ी सी - जरा सी
मट्ठा डालें हम उसकी जड़ों में जरा-जरा-सा
कि अरड़ाकर गिर जाये आतंक का पेड़
और स्वयं ही जल जाये बची हुई बारूद,
उपसंहार हो जाये बची हुई हत्याओं का
हम उनके गवाह न बनें जो नष्ट हुए जा रहे हैं
धूप की इस नयी रंगत में
हम नहीं देखें कमीजों पर लहू के निशान
आसपास रहते हुए उगती है संदेह की नागफनी
एक ही रास्ते पर चलते हुए
दो हो जाते हैं हमारे रास्ते
जाने कैसे अलग-अलग रंग दीखने लगते हैं रास्तों के
कल तक हमारे चाचा होते थे सोबराती
आज दरवाजा बन्द करने लगे
हमें देखते ही
एक प्याला उनका भी होता था
हमारी चाय में
उनके बच्चे हिन्दी पढ़ते थे हमसे
और हम गणित
एक सड़क बाँटती थी हमारे घरों को
और कुछ भी नहीं
नमक तक हम माँग लिया करते थे
कभी-कभी लालटेन भी

आज जुमेरात को हँसी के फूल के बदले
उनके ही घर से आया पहला पत्थर
लहूलुहान हो गया हमारे भाई का पाँव
क्या हुआ कि अयोध्या यहीं आ गया
हमारे बीच
हवायें अब भी आती हैं उधर से
पर उसमें खुशबू नहीं होती
ईद-बकरीद के जलसे का गीत अब इधर नहीं आता
मुहर्रम पर उदास होते हैं हम
पर शादाब हमारी उदासी से उदास नहीं होता
अब नही सुनता वह राम की कथायें
राम के वनगमन से दुखता था उसका मन
क्या मस्जिदों में अब खुदा नहीं होता
या कि मंदिरों में भगवान
कि बरसते हैं वहीं से पत्थर, चाकू और डंडे
आ जाते हैं हमारे बीच
खून के रेले
एक अयोध्या आदमी से बड़ा नहीं होता
या कि एक मस्जिद इतनी बड़ी नहीं कि
आदमियत को लील जाये
इस सभ्य आतंक को अपनी साँसों पर उठाये
चलते रहते हैं हम
हम घर से कब निकलेंगे अहमद
आँसू गैस से भरी हवा कब जाएगी हमारे मुहल्ले से सूरज!
आओ हम एक दूसरे के बारे में सोचें
लम्बी होती है आदमी की जड़ पेड़ की जड़ से
और आदमियत की जड़ तो उससे भी लम्बी

सूखती नहीं वह नदी

शान्ति सुमन

किताब पब्लिकेशन

मूल्य	:	125 रुपये
©	:	लेखकाधीन
प्रथम संस्करण	:	2009
प्रकाशक	:	किताब पब्लिकेशन
कार्यालय	:	हाजीपुर रोड, मुजफ्फरपुर - 842002
दिल्ली सम्पर्क	:	जी.-72, गंगा विहार, गोकुलपुरी, दिल्ली - 110094
अक्षर-संयोजन	:	अजीत कुमार वर्मा
आवरण	:	पिंटू
मुद्रक	:	बी० के० ऑफसेट, दिल्ली - 32

SUKHTEE NAHIN WAH NADEE

By **Shanti Suman**

आरंभिक / समय में रचनात्मक हस्तक्षेप

जानी-पहचानी कवयित्री **शांति सुमन** की पहचान प्रायः गीतकार या नवगीतकार के रूप में रही है। समय का दबाव ऐसा कि आज वे गद्य-लय में काव्य-सृजन कर रही हैं और **'सूखती नहीं वह नदी'** संग्रह से यही नई पहचान संभव हो सकी है और विकसित भी। गाँव-शहर के सीमान्त पर शांति सुमन ने 'पेड़ों की शक्ल में लोग', 'रोटी के पेड़', 'नई बात नहीं', 'किशोरी अमोनकर को गाते हुए देखकर' जैसी कविताएँ लिखी हैं जो समय में रचनात्मक हस्तक्षेप के मानिन्द हैं।

शांति सुमन संवेदनशील कवि हैं और सम्बन्धों का राग पहचानती हैं। उनके लिए 'चिड़िया' कभी माँ हो जाती है, कभी 'दियारे से शहर तक' का लैण्डस्केप सादगी में चकित करता है। चिमनियों से भरे शहर का धूल-धुआँ शांति सुमन के काव्य-समय में वर्जित नहीं है। 'पतझड़ में' कविता में पेड़ पत्तों से वंचित होते हैं, पर ऑफिसर्स फ्लैट में टाइल्स की चमक बढ़ती जाती है। आउटहाउस के बच्चे और उनके मज़दूर पिता सभ्यता की अंधी दौड़ में शामिल हो जाना चाहते हैं।

शांति सुमन पठन के संस्कार के चलते 'टेनीसन' की कविता से रू-ब-रू होती हैं और वसंत-दर्शन कवयित्री का अपना अनुभव बन जाता है। वसंत-लदे खेत में कविता आश्चर्य हो सकती है और प्रीतिकर अनुभव भी। सुशांत की स्मृति-श्रंखला में एक-दो कविताएँ करुणा का विस्तार करती हैं और निजी क्षति के एहसास को गहरा कर जाती हैं। मीरा को गाती किशोरी अमोनकर मीरा से आगे चली जाती हैं। किशोरी अमोनकर गाती हैं तो शृंगारी वैराग्य को छंद मिलता है। कवयित्री का सवाल है—'इतनी अतल होगी क्या कोई भी नदी/ जहाँ से निकलते हैं तुम्हारे/वैरागी ताल/ संगीत का जलता ज्योतिपिंड बन जाती है/ तुम्हारे माथे पर लगी लाल बिन्दी/ साजन आओ म्हारे देश गाती हुई/ नही लगता तुमको / कि तुम्हारे संग-संग गाती हैं मीरा...../'।

'फ़सल की किताब' में स्त्री की आँखों में 'चूल्हे की धौंक दिख जाती है। उसके लहू में अगहनी फसल की फुनगियाँ झलक जाती हैं।' ईटानगर, कमलपुर डुमुरडीहा स्थानवाची नाम भर नहीं है—सफ़र में पड़ाव हैं। बेटे के जन्मदिन पर शांति सुमन की कविता 'सोलह फ़रवरी—तुम्हारे जन्मदिन पर' एक मंगल-कामना है, जिसमें 'चन्दन-तिलकित भाल' जैसे प्रयोग सम्बन्ध की गरमाई का आभास देते हैं। यहाँ भी माँ-बेटे के बीच रोटी आ जाती है। यह कामकाजी दुनिया का सच है। जिस घर-गृहस्थी

में माँ पहले से रमी हुई हैं, नई बहू उनके सारे काम सँभाल लेती है। भाभी के लिए शांति सुमन का सद्भाव औपचारिक नहीं है। 'वे जब झाड़ू पकड़ेंगी/फेकेंगी बुहारन / तो उनके छोटे घर में, पड़ेंगे नहीं जाले / कलश, चौक, आसनी / सब कुछ चमकेंगे / और यह छोटा घर भी।'

शांति सुमन की कुछ कविताएँ आधी-अधूरी कथा लगती हैं। जैसे—'अब माँ नहीं हैं'। 'अब माँ नहीं हैं / और नहीं है वह नदी भी / मटियारी मिट्टी है उसके पेट में / उपजते हैं उसमें—जौ-गेहूं और सरसों / मगर तुम तो कहते थे / कभी सूखती नहीं थी वह नदी / जाने कहाँ से भर जाते थे उसमें अथाह जल....।' कविता का अंत साधारण है, पर स्वप्न-विचार में अभिन्न। 'नहीं टूटेगा पुल' यह स्वर अदम्य आस्था का है। शांति सुमन स्त्रीवादी नहीं हैं, पर स्त्री-उत्पीड़न का सच जानती हैं। 'नयी बात नहीं' में एक स्त्री का शव एक संक्षिप्त त्रासद कविता-कथा है। स्त्री का शव है, तो पुरुष उसमें भी 'देह' देखते हैं। मीडिया के लिए स्त्री का शव ख़बर है। कवयित्री के शब्द हैं—'उसकी आत्मा में ईश्वर नहीं था / उसकी आत्मा तक गया नहीं ईश्वर / वह सिर्फ़ देह थी, देह के साथ रही / देह लेकर मर गयी / मनुष्य होने की आदिम परिभाषा / पर भी पत्थर रख गयी।'

'सूखती नहीं वह नदी' में वैविध्य है और नयी काव्य-संभावना की झलक भी। सरलता है—पर सरलीकरण से बच कर। इस सरल वैविध्य में चुप्पी है, मितकथन की कला भी। प्रकृति और मनुष्य के बीच का अनवरत संवाद प्रीतिकर है। उसे विचारों में रिड्यूस करने का बड़बोलापन नहीं है। **शांति सुमन** नयी खिड़कियाँ खोलती हैं और स्मृति-जीवन में कविता को नयी पहचान देती हैं। **शांति सुमन** की कविता मंथर लय में चलकर जीवन वृत्तान्त बनती है। वे मानेंगी—आगे राहें और हैं। समय इतना सरल नहीं है—वह वैश्वीकरण और बाज़ारवाद की गिरफ़्त में है। बेशुमार चीज़ें कविता को कथा बना रही होंगी। तब कविता भी कुछ और होगी।

—परमानन्द श्रीवास्तव

इस तरह

कविता लिखना भी इतना आसान नहीं होता यदि उसमें शाब्दिक छन्द का पूरा निर्वासन नहीं हो और गद्य-लय भी बनी रहे। जो छन्द शब्दों के अंतर्जगत में होता है, वही कविता में उतरता है। अलग से उसमें मात्राओं का संतुलन नहीं होता। प्रत्येक जागरूक रचनाकार समय में सार्थक रचनात्मक हस्तक्षेप करता है। मेरी कविता भी समय के साथ रचनात्मक भागीदारी की प्रतिश्रुति है।

मैं गीत लिखती रही हूँ। मेरे सात गीत-संग्रह प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त गीतों के तीन सहसंकलन भी। 1994 में 'समय चेतावनी नहीं देता' के नाम से मेरी कविताओं का एक सहसंकलन भी आया। वे गीतों के दिन थे—कभी उजले, कभी कठिन-मलिन भी। गीतों के संग्रहों के साथ कविता-संग्रह के प्रकाशित नहीं होने के कई कारण हो गये। कई बार सम्पादकों-प्रकाशकों ने कविता के बदले मेरे गीत माँगे। कवितायें छपीं भी, पर गीतों की तरह उन पर प्रतिक्रियाएँ खुलकर नहीं आईं। इसलिए यह निर्णय लेने में समय लग गया और इसके पहले मेरा स्वतंत्र कविता-संग्रह नहीं आया।

'समय चेतावनी नहीं देता' में मैंने अपने हिस्से की कविताओं के पूर्व एक छोटी टिप्पणी दी थी। टिप्पणी से अधिक वह आत्मकथ्य था जिसका शीर्षक था—'जिन्दा रहने का सबूत'। मैंने लिखा था—"मेरे गीत हों या कविता, अंतरंगता उसमें आ ही जाती है। मुझको लगता है कि जब आप किसी गीत या कविता को पढ़ते हैं तो आप उस पूरे समाज-संदर्भ को ही पढ़ते हैं। कवि जिन परिस्थितियों को जीता है, कविता में उसके जिये गये अनुभव ही जीते हैं। माँ-पिता, घर-गाँव, सारे सम्बन्धों से होती हुई कविता व्यवस्था के चक्रव्यूह में फँसती है और जिस आत्मीयता से गाँव-घर को बुनती है कविता, उसी तीक्ष्णता से व्यवस्था के घिनौने चेहरे को भी बेनकाब करती है। इस प्रकार अपना जन-पक्ष सिद्ध करती है।

कविता मेरे सामने मनोरंजन का साधन नहीं, अपितु जीवन-संघर्ष के लिये एक पैना औजार है। इसलिये जीवन और समाज के कितने ही उतार-चढ़ाव लेकर आती है वह। संभव है, आप मुझको नहीं जानें और आपको ये कवितायें रोमानी लगें, पर सच्चाई तो यह है कि ये मेरे संघर्ष करते हुए जीवन की कवितायें हैं। इनको मैंने तबसे लिखना शुरू किया जब नवगीत का दौर चल रहा था। कुछ तो अपने स्वाभाविक संकोच और कुछ सम्पादकों की हठधर्मिता के कारण मेरी कवितायें गीतों की तुलना में कम ही प्रकाशित हो सकीं। अब जीवन और समाज के सम्बन्ध, प्रेम और संघर्ष की दुनिया लेकर आई हुई मेरी कुछ कवितायें आपके सामने हैं। इनमें विचार और संवेदना का कोई ईमान

आपको मिले तो इन कविताओं की अंतर्वस्तु सार्थक होगी। अपनी जमीन और जमीर के साथ होने की सूचनायें इनसे मिलें—यही चाहती हूँ। देखिये, कहीं हमारे जिन्दा रहने का सबूत इनमें मिल जाये।''

इस तरह **'सूखती नहीं वह नदी'** मेरी कविताओं का पहला एकल संकलन है। इसमें अस्सी कवितायें हैं। कुछ कवितायें जो श्रोताओं-पाठकों-समीक्षकों को प्रिय हैं, उनमें 'सोलह फरवरी—तुम्हारे जन्म दिन पर', 'फसल की किताब', 'नदी', 'आवाजें', 'पतझड़ में', 'अब माँ नहीं है', 'नहीं टूटेगा पुल', 'रोटी के पेड़', 'पानी के सपने', 'किशोरी अमोनकर को गाते हुए देखकर', 'उन दिनों', 'ऋतुकथा' आदि हैं। कई स्थानों पर 'बची हुई मनुष्यता', 'नयी बात नहीं' और 'नींद में झुकी जा रही लड़की' आदि कविताओं की चर्चा हुई।

मुझको प्रसन्नता है कि इतने लम्बे समय के बाद **'सूखती नहीं वह नदी'** प्रकाशित हो रही है। मेरे अंतर्वाह्य संघर्षों, जीवन की असुविधाओं और व्यवस्था की जटिलताओं ने इन कविताओं को लिखने की जमीन दी है। इन दिनों जमीन का मिलना भी बड़ी बात है। इसी से सम्बन्धों का रागात्मक लगाव मुझमें सघन हुआ है। मेरी संवेदनाओं में गाँव है, इसलिये शहर की चमक इनमें कम है। जहाँ भी शहर हैं, वहाँ अपनी तरह की विसंगतियाँ हैं। उजड़ने के बाद भी गाँव गाँव की तरह लगता है, भीषण बाढ़ के चले जाने बाद बालू उगलते खेत में भी गाँव दीखता है। सरपत का एक भी अँखुआ उगेगा तो फिर कोशी का कछेर हरियाली पहन लेगा। मैं मानती हूँ कि कविता भी बची हुई संवेदना, बचे हुए शब्दों के ईमान से फिर-फिर अपने को रचती है और अपना होना प्रमाणित करती है। तब साधारण जन की साँसें ही कविता का उपकरण बन जाती हैं। कोमलता की, भावना की, संवेदना की नमी को यही कविता बचाती है। इस नमी के कारण ही कविता शब्दों से होकर जनता तक पहुँचती है। वह समय और समाज में रचनात्मक हस्तक्षेप होती है।

मैं सामाजिक सरोकार के संवेदनशील कवि और विद्वान समालोचक डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव का विनम्र आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने **'सूखती नहीं वह नदी'** का आरम्भिक लिखकर मुझको स्नेह और गौरव किया। साथ ही सामाजिक संदर्भों के नितान्त आत्मीय और जनपक्षधर रचनाकार, वरीय आलोचक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के प्रति मेरे मन में अपार कृतज्ञता है जिन्होंने इस कविता-संग्रह का फ्लैप लिखा। अपनी अन्तरंग रचनाएँ—पुत्र अरविन्द, पुत्री कवयित्री चेतना वर्मा, वधू डॉ० विशाखा वर्मा और बच्चे—शालीना-ईशान, अपूर्व-श्रेयसी के लगाव इनमें रचे-बसे हैं।

सम्प्रति 'कविता के कुछ और होने' की प्रतीक्षा में—

—शांति सुमन

मीठनपुरा, क्लब रोड,
भी.सी. गली, रमना, मुजफ्फरपुर
29-3-'09
मो० : 9430917356

डॉ० शिवकुमार मिश्र,

डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह,

डॉ० मैनेजर पाण्डेय,

डॉ० रेवतीरमण

एवं

नचिकेता

को

अनुक्रम

सोलह फरवरी—तुम्हारे जन्म-दिन पर	11	कौंधता हुआ घोंसला	62
बची हुई मनुष्यता	13	नदी	64
अपनों से अलग	18	साँझ	65
नदी	20	हमारा हरापन	66
आवाजें	22	कहना जरूरी है	67
प्रेमचन्द की कहानी की तरह	24	माँ ने लिखा है	68
पतझड़ में	26	पेड़ों की शक्ल में लोग	69
अब माँ नहीं है	28	जानता है समुद्र	70
नहीं टूटेगा पुल	30	कितने भी चिह्न	71
जिन्दगी से मुठभेड़ करते	32	पृथ्वी से संवाद	72
अभी भी दीखती हैं	34	चूल्हा नहीं जलता	73
दौड़ लगाता बच्चा	36	लालिम पत्ती	75
रोटी के पेड़	37	फिर एक दिन	76
माँ को खत	38	उठता है धुआँ	77
उगी है धूप	39	फूलवाली	79
दिपता हुआ चेहरा	41	हँसी की गूँज	80
देखना जरूरी है	42	इच्छाशक्ति	81
नयी बात नहीं	44	जीने लायक पृथ्वी	82
तुम वही खुशी हो	45	सुगंध सी बेटी	83
धरती का हरापन	47	घास की गंध	85
फसल की किताब	48	बहुत दिनों पर बरखा	86
आँखें बरसात में	49	बथुआ का साग चुनते	88
पढ़ी-लिखी नहीं है बेला	51	गंगाडीह की सड़क पर	90
छोटे-छोटे दुख	53	चिड़ियों को नहीं मालूम	91
उजला भिनसार	54	डुमुरडीहा में	93
रास्ता दिखाया दुर्दिन ने	55	हँसती है रंगोली	95
मद्धिम वसंत	57	भोली लड़की	97
पानी के सपने	58	ऋतु-कथा	98
नींद में झुकी जा रही लड़की	60	रुआँसी है चिड़िया माँ	99

किशोरी अमोनकर को गाते हुए देखकर 100
आवे कुम्हार के 103
उदास है अमलतास 105
एक भीगी मुस्कुराहट 106
हिरन और मछली 108
तुम्हारी मिट्टी 109
बंजर में बीज 110
दियारे से शहर तक 111
आँचल के रंग 112
कोई भी कविता 113
अपना अंधकार 114
चीजों की तरह 115
नई गंध 116
शायद 117
स्वीकार 118
दौड़ लगाता बच्चा 119
उन दिनों गाँव में 120
साफ-सुन्दर दुनिया 122
पिता को खत 124
सबकुछ 126
कोने में पड़ी किताब 127
धन्यवाद 128

सोलह फरवरी–तुम्हारे जन्म दिन पर

इस छोटे शहर की
बड़ी लगनेवाली रात में
जब आती-जाती रोशनी के बीच
अँधेरा और घना हुआ है
बेटे, मुझको तुम्हारे ललाट की
प्रशस्ति और आँखों की चमक
याद आई है
कल तुम्हारे जन्मदिन पर
मन होता है सामने रहे
तुम्हारा चन्दन-तिलकित भाल
अभी-अभी पहनाये हैं
आशीषों के कवच
सिक्त किया है तुमको प्रार्थनाओं
के जल से
पूर्वजों के पुण्यों से माँगा है
तुम्हारे लिये अभय
सब हुआ, सब होगा
मेरे बेटे,
पर कल आनेवाली सोलह फरवरी
फिर फेंक देगी मुझको अपने अँधेरे में
इस छोटे शहर की बड़ी लगनेवाली रात
में उतरेगा तुम्हारा बचपन
तुम्हारी हँसी, तुम्हारी जिद

और मेरा अजस्र प्यार
और तुम चिमनियों भरे शहर
के धूल-धुएँ से लड़ते
पूरी पृथ्वी के लिये उजाला
बो रहे होगे
तुम्हारे माथे पर हाथ रखने की
इच्छा को प्यार करती हुई
तुम्हें दूर से देखूँगी
क्योंकि तुम्हारे और मेरे बीच
रोटी है।

16.2.'85

●

बची हुई मनुष्यता

तुड़े-मुड़े पुआलों के ढेर पर बैठा कातिक पातर
अधनींदी आँखों से देखता है
अपनी बाँहों पर उगी नसों की धारियाँ
इस दलान के बाहर रोता है उसका बचपन
और पलक झपकते उसकी आँखें
मुट्ठियाँ ताने शब्द हो जाती हैं
उसको पता नहीं होता कि इस पूस की धूप में
कितनी है उसके बच्चों की हँसी
और कितने उसकी माँ के आँसू
आज से बीस-पच्चीस बरस पहले ही
जनमने लगे थे आतंक उसकी नींद में
देखा था उसने पुलिस को गश्त लगाते हुए
हलुदबनी की हाट से लौटते हुए
धीरे से हँसा था वह, तीता हो गया था उसका चेहरा
कोई भी आतंक आतंक नहीं हो जाता पहली बार में ही
कई सारी शिकायतों / विद्रूपों के मलवे पर
जन्म लेता है एक आतंक
बेरोजगारों की उम्मीदों और सपनों से
किये गये फरेब और नाउम्मीदी को आदमी की नियति
बना देने की क्रूर साजिशों में
ऐसे दिनों के आने से काँपी जिन्दगी
जब आँखों में आसमान के रंग नहीं आने लगे

हवाओं में उठते हुए हाथ
अनदिख होने लगे
बाँहों को बल देकर मुट्ठियाँ नहीं बँधने लगीं
नहीं करने लगी चिड़िया लोगों की
संवेदनाओं से सीधा संवाद
तपते जेठ में छूटते बिजली के भी पसीने
अपहरण-हत्याकांड से सुर्खियों में आते लोग
शादीशुदा महन्त करते मठों की रखवाली
आजीवन कारावास की सजा या बम से जानलेवा हमला करने
के मामले में भी आदमी बरी हो जाता है
आज तक नहीं आया '99 में अगुवा हुआ छोटेलाल
इधर जलावन बनते जा रहे सूखते गन्ने
गन्ने के साथ जलते किसानों के अरमान
चैन की नींद ले रहे मुखिया, सरपंच
और सरेआम होता आतंकियों का तालिबानी फरमान
घरों के दरवाजे, स्कूलों और गाँवों-शहरों को जाते
रास्तों पर सटे पोस्टर, लूट-पाट, हत्या
उगते रहते हैं जाने कितने कोदाईबाँक
मिट्टी खून से रँग जाती है
कतारों में सो जाते हैं अनिल मरांडी
जेल में होते लाठी-चार्ज, कैदी भूख हड़ताल पर
रास्ते और रंगदारी के विवाद
प्रदर्शन करते लोगों पर पानी की बौछारें
जाने कितने अष्टयाम बच्चों की सलामती के लिये
और लोगों में इस विश्वास के लिये
कि फूटता है पाप का घड़ा एक-न-एक दिन
बार बार बँधती है प्रजा व्यवस्था की जंजीरों से

और कितनी बार नाकाम होती जिन्दगी
कब तक नहीं खुलेंगे विचारों के बन्द दरवाजे
इससे पहले कि खरोंची जाये बच्चों की
हँसी और नींद
माँ की साड़ी में आँसुओं के पेबन्द लगें
जीती रहें शुभकामनायें थोड़ी सी - जरा सी
मट्ठा डालें हम उसकी जड़ों में जरा-जरा-सा
कि अरड़ाकर गिर जाये आतंक का पेड़
और स्वयं ही जल जाये बची हुई बारूद,
उपसंहार हो जाये बची हुई हत्याओं का
हम उनके गवाह न बनें जो नष्ट हुए जा रहे हैं
धूप की इस नयी रंगत में
हम नहीं देखें कमीजों पर लहू के निशान
आसपास रहते हुए उगती है संदेह की नागफनी
एक ही रास्ते पर चलते हुए
दो हो जाते हैं हमारे रास्ते
जाने कैसे अलग-अलग रंग दीखने लगते हैं रास्तों के
कल तक हमारे चाचा होते थे सोबराती
आज दरवाजा बन्द करने लगे
हमें देखते ही
एक प्याला उनका भी होता था
हमारी चाय में
उनके बच्चे हिन्दी पढ़ते थे हमसे
और हम गणित
एक सड़क बाँटती थी हमारे घरों को
और कुछ भी नहीं
नमक तक हम माँग लिया करते थे
कभी-कभी लालटेन भी

आज जुमेरात को हँसी के फूल के बदले
उनके ही घर से आया पहला पत्थर
लहूलुहान हो गया हमारे भाई का पाँव
क्या हुआ कि अयोध्या यहीं आ गया
हमारे बीच
हवायें अब भी आती हैं उधर से
पर उसमें खुशबू नहीं होती
ईद-बकरीद के जलसे का गीत अब इधर नहीं आता
मुहर्रम पर उदास होते हैं हम
पर शादाब हमारी उदासी से उदास नहीं होता
अब नही सुनता वह राम की कथायें
राम के वनगमन से दुखता था उसका मन
क्या मस्जिदों में अब खुदा नहीं होता
या कि मंदिरों में भगवान
कि बरसते हैं वहीं से पत्थर, चाकू और डंडे
आ जाते हैं हमारे बीच
खून के रेले
एक अयोध्या आदमी से बड़ा नहीं होता
या कि एक मस्जिद इतनी बड़ी नहीं कि
आदमियत को लील जाये
इस सभ्य आतंक को अपनी साँसों पर उठाये
चलते रहते हैं हम
हम घर से कब निकलेंगे अहमद
आँसू गैस से भरी हवा कब जाएगी हमारे मुहल्ले से सूरज!
आओ हम एक दूसरे के बारे में सोचें
लम्बी होती है आदमी की जड़ पेड़ की जड़ से
और आदमियत की जड़ तो उससे भी लम्बी

हम क्यों लगायें अँधेरे का चेहरा
क्यों पहने लोहे के जूते
क्यों डरे सपनों में—क्यों! क्यों!
हमारे बच्चे आपस में खेलना चाहते हैं
दौड़ना चाहते हैं साथ-साथ
कभी किसी का टिफिन छूट जाये
तो दूसरे के टिफिन से ही पेट भरना चाहते हैं वे
दूकानें लुटती हैं, अस्मतें भी, सौन्दर्य के माथे पर बन्दूकें
तन जाती हैं
कहो सच है कि नहीं रिजवी!
पर यह एक बात झूठ नहीं है कि अपने-अपने
डरों से भागते हुए दो दिशाओं में भी
हम कितने जुड़े होते हैं ईद की सेवई और होली के पुए को
याद करते हुए
घरों के दरवाजे अलग होने के बावजूद
परकटी चिड़िया को उसके साबुत पंख लौटा
देने के लिये
हवाओं में विषैली गंध की जगह
खुशी की सुगंध बाँटने के लिये
पृथ्वी पर अभी भी बचा है बहुत कुछ
किस कोख से जनमेगी मनुष्यता
आओ उस बचे जीवन और
बची हुई मनुष्यता को
बचा लो।

13.3.08

●

अपनों से अलग

बालकनी में गुलाब हैं
और उसके पीछे पेड़ों से बेतहाशा झरते पत्तों की बरसात
यही होता है इन दिनों
आफीसर्स फ्लैट में बालकनी पिछवाड़े ही होती है
आगे में सिर्फ चढ़ने-उतरने की सीढ़ियाँ
सिर्फ देखने के लिये होती है बालकनी
कुछ भी नहीं होता वहाँ कुछ गमलों के सिवा
नहीं सूखतीं वहाँ बड़ियाँ, दालें या धोये हुए गेहूँ
कपड़े भी नहीं झड़ी लगने पर
कुर्सी पर बैठकर या खड़े होकर दीखते हैं
पीपल के अजस्र पत्तों से भरी डालियों वाले,
कुछ पपीतों और कुछ
पहाड़ी पत्तेदार पेड़ जिनपर फुनगियों तक चढ़ी मनीप्लांट
की बेलें
कितना पसन्द है यह सब शालीना को
ईशान जब-तब यहाँ सबके फोटो लिया करता है
आज अचानक ही मेरे पास गमला में गिरा
पीपल का एक पत्ता
मैंने देखना चाहा उसका अभी-अभी टूटने का दर्द,
डाली से अलग उसका चेहरा
कितना निस्पन्द और निश्शब्द लगा वह
अपनों से अलग होकर यद्यपि गिरा वह गमला में

फिर भी कितना निखरा था उसका दर्द
जीवन जिये जाने की अतृप्ति से भरा
इसलिये शेष था उसमें जीवन
गिरकर भी पत्ता पीपल के साथ था
अभी जीवित थे उसके एहसास
मैंने उस पत्ता को प्यार से उठाया
और बार-बार देखते हुए उस जगह को
जहाँ से वह टूटा था उस पर हाथ रखा
अच्छा है कि वह एक बार टूटा
आदमी तो टूटने के सिलसिले को ही
जीवन मान लेता है।

27.2.'07

नदी

पानी नहीं है तो क्या
नदी तो है
अभी बरसे बादल या आये बाढ़
तो भर जाएगी नदी
अपनी दादी की तरह
दादी बूढ़ी है, कमजोर है तो क्या
दादी तो है
दादी है तो पिता को अहसास है कि उनकी माँ है
दादी है तो हाँक लगती रहती है दिनभर—
दूध पी लो, नाश्ता तैयार है, खाना लग गया है
अरे, यह आधा खाकर किसने छोड़ दिया,
कौन अभी तक नहीं आया
दादी है तो डाँटती है—इतना नहीं खेलो
कभी देर तक खेलकर आने पर दरवाजा
नहीं खोलती, गुस्सा होती है
फिर वही खोल देती है दरवाजा
उसके अनुभवों से गढ़े शब्द हमें जगाते हैं
दादी है तो यह सब है
टेबुल से गिर जाती हैं पेन्सिलें, रबर या
किताबें तो दादी उठाती है
खाली पैर चलो तो अप्रसन्न हो जाती है
किताबों के पन्नों की तरह खुले होते हैं उसके दुख

और शब्दों की तरह छपी होती है उसकी खुशी
हवा का एक हल्का झोंका है उसका गुस्सा
शहद में लिपटी हुई उसकी ममता
तुलसी के पत्तों सा गमकता उसका स्नेह
आँखों की नींद और खुशी के सपने हैं
हमारे लिये
नदी सूख भी जाएगी तो नदी होगी
चिड़िया जाएगी उसके पास
पेड़ बदल नहीं लेंगे जगह—खड़ें रहेंगे
उसके किनारे, भाग नहीं जायेंगे उसकी
बगल के मंदिर से देवता
कोई नहीं छीन लेगा नदी से नदीपन।

27.2.'07

●

आवाजें

चिड़िया के चहचहाने से खुल जाती थी
जिसकी नींद
तेज रोशनी में दुखती थीं आँखें
बाहर के शोर नहीं आये
इसलिये बन्द रहती थीं खिड़कियाँ
कोमल संवेदनाओं को पहनकर उतरती थी
तुम्हारी भाषा और घर की चौखट से
लेकर दरोदीवार तक रंग जाता था
अपनापन
आज झाँकने लगा है बाजार तुम्हारे घर में
तुम्हारे कमरे तक पहुँच गयी है उसकी
धड़कन
इसलिये बहुत ऊँची हो गई हैं तुम्हारी आवाजें
जो इमन की तरह बजती थीं कभी
लगातार रात-रात जगना, दिन भर रहना
नींद के हवाले ने सोख ली है तुम्हारी
दिनचर्या की नमी
जिसमें नहीं बचा है
तुम्हारा मामूलीपन
यह मामूलीपन कहीं से दाग नहीं, गहना
है जो जमीन से जोड़े रहता है, अपनापन का
पूरा साम्राज्य बिछा देता है, भर देता है साँसों में

ताजापन और छींट देता है प्यार के बीज को
धरती परं छतनार वृक्ष बनने के लिये
ये दवाएँ, लहू, आपरेशन, उठती-गिरती साँसें,
छटपटाहट और जिन्दगी की असलियत—यही हैं तुम्हारे अनुभव
ये जितने भी सच हों, पर झूठ नहीं हैं—
ईख की गाँठ-गाँठ में कल्लों का फूटना, बारिश का
पहला पानी चिड़िया की पाँखों पर गिरना, सपना देखते हुये
साँसों का भापों की तरह उठना, बिना पलक गिराये
आकाश में इन्द्रधनुष देखना
तुमने जब से यह सब देखना कम किया है
ऊँची हो गई हैं तुम्हारी आवाजें
तुम्हें कहाँ पता है कि कहाँ-कहाँ
अस्थिर कर देती हैं ये आवाजें.....।

20.2.07

●

प्रेमचन्द की कहानी की तरह

फिर चली जाएगी वह
मौसम की तरह तो नहीं
सिलेबस की किताब की तरह
बदलती है फुआ की यात्रा
तीन साल से यहीं तो थी
अबकी चली गयी है अक्तूबर में
देखूँ, कब आती है
'पूस की रात' तीन नहीं और भी ज्यादा वर्षों से
कोर्स में थी, अब लग गई है 'बड़े घर की बेटी'
ईशान कहता था उसके ठीक पहले नवें क्लास में पढ़ाई जाती थी
'शतरंज के खिलाड़ी' और अब अपूर्व जब पढ़ेगा तब होगी
कोई और कहानी
फुआ प्रेमचंद की कहानी की तरह आती-जाती है
कहानी बदलती है, पर प्रेमचंद नहीं बदलते
फुआ की यात्रा कभी मुजफ्फरपुर, कभी फारबीसगंज कभी
दिल्ली होती है, हरबार लौटकर फुआ अपनी तरह हो जाती है
इस बार जब वह जाने लगी तो उसके साथ हो गये बादल,
बरसात, हवा, गंध और मौसम के गीत भी
फुआ जब आएगी तब तक वैसा ही रहेगा खालीपन
फूल खिलेंगे, पर गंध नहीं उड़ेगी और नहीं गाएगी चिड़िया गीत,
खेत के धान भी नहीं पकेंगे और हँसिया-बोरे लिये
इन्तजार करेंगी दिन-दिन तक गोपी किसान की बेटी

और उसकी सिलहारिन सहेलियाँ
पीपल के पत्ते गिरने लगे हैं
उदासी पाँव रखने लगी है खिड़की-दरवाजों पर
अबकी फुआ आएगी तो रोक लूँगी
उसके रूकने से रूका रहेगा मौसम
नहीं भी रहती है वह तो अपना रहना छोड़ जाती है
कट जाने के बाद भी जैसे खेत में बचा
रहता है धान के होने का सबूत।

28.2.06

●

पतझड़ में

इन दिनों पतझड़ में
जब पेड़ों पर रह गई हैं कम पत्तियाँ
दीखने लगी हैं स्कूल की चारदीवारी की बगल की सड़कें,
दौड़ती हुई तरह-तरह की गाड़ियाँ,
पैदल चलते लोगों के हाव-भाव
यहाँ आफीसर्स फ्लैट में रहते—गाँव और शहर दोनों
के एहसास जगते हैं—
आगे से शहर और पीछे से गाँव
आगे टाइल्स जड़े पक्के कैम्पस में
किनारे-किनारे साहबों के गेराज
और उनमें जड़े ताले
खुलते बन्द होते उनके दरवाजे,
हार्न की तरह-तरह की कोमल-कठोर ध्वनियाँ
खेलते हुए आउटहाउस के बच्चे
साहबों के बच्चों की नकल करते उनके पहनावे
बहुत बार तो उनके उतरन भी
उनकी शोभा बनते
फ्लैटों में चौका-बर्त्तन करती उनकी माँयें
और गाड़ियाँ पोछते उनके पिता
आगे करते सभ्यता की अँधी दौड़ में उनको
साहबों से पैसे उधार ले
उनकी कमीज-टाई खरीदते

और टाटा की ईंट फैक्टरियों पर पहुँचते
हाँफते-हाँफते नौ बजते-बजते

सोचती हूँ परसों बेटी आयेगी तो कुछ और
बाँट देगी कपड़े निकालकर
आलमारी में बनायेगी जगह
और इस पतझड़ में
वसन्त की आहट सुनने को
अधीर हैं पत्तियाँ जिस तरह
इन बच्चों की देह पर होंगे
रंगीन कपड़े—
बड़े होंगे तो मोड़ लेंगे,
छोटे तो नीचे कर लेंगे
चलेंगे सब तरह से
उतरन से होकर ही वसन्त आयेगा
पीछे मुड़-मुड़कर देखते चलेंगे बच्चे
खुशियों में रँगे होंठ लिये
दीखती रहेंगी कान्वेन्ट की बगलवाली सड़कें
वसन्त के आने तक
फिर तो पेड़ भर जायेंगे—
पत्तों से।

27.2.07

●

अब माँ नहीं है

तुम्हारे गाँव की बगल से
बहनेवाली नदी
ढाई कोस दूर से ही चली जाती है
आस-पास के गाँवों की ओर
किनारे पर छोड़कर
ढेर सारे पटेर और सरपत के
हरे-हरे हिलते पत्ते
किसी भी गाँव जानेवाले यात्री के
पाँव पखारती है वह नदी
बचपन में सोने के पहले
रोज पाँव धो देती थी माँ
कहती—बुरे सपने आते हैं—
गंदे पाँव सोने से
अब माँ नहीं है
और नहीं है वह नदी भी
मटियारी मिट्टी है उसके पेट में
उपजते हैं उसमें जौ-गेहूँ और सरसों
मगर तुम तो कहते थे
कभी सूखती नहीं थी वह नदी
जाने कहाँ से भर जाते थे उसमें अथाह जल
एक बार तुम्हारे पिता भी बाढ़ के दिनों में
उसके पार हुए माथे पर रखकर झोला और चप्पल
कितने अपने, किसान-स्वभाव से भरे

सादा और संतुष्ट
लगते थे तुम यह सब कहते हुए
पर वह क्या था, कैसी जिद
जो तुमको बहाकर ले जाती थी
हमसे दूर—बहुत दूर
भादो के आकाश में उड़नेवाले बलाका की तरह
लगने लगते थे तुम
जो सामने से उड़ते जाते हुए दूर तक
हो जाते हैं अनदिख
स्वप्न तो नहीं हो तुम
शामिल हुए ठोस विचार की तरह
हमारी दिनचर्या में
पर विचार भी कहाँ रहते हैं
एक जैसे सबदिन।

30.11.06

●

नहीं टूटेगा पुल

चलकर देखो,
नहीं टूटेगा यह पुल
जिस पर तुम खड़े हो
भले पुरानी पड़ गई है इसके बाँस की बल्लियाँ
पर इरादे मजबूत हों तो
पुरानी धमनियों में भी दौड़ता है
लाल-लाल लहू
नीचे जो नदी बहती है
अन्धी आँखोंवाली नहीं
किनारों को सतर्क करती हुई
पुल पर चलनेवालों के
पैरों को भी होशियार
करती है
चलो, डरो नहीं,
पुल पर चलते हुए वनस्पतियों की तरह
हरियाएगा तुम्हारा मन,
आँखों में फूटेंगे अजस्र झरने और
पास के सरोवर में पुरइन के पत्तों पर
बूँदों सा ढलमल करता
तुम्हारा अहसास
भर देगा तुम्हें भीतर से
पिछले मोड़ पर जिस वसंत को छोड़ आये तुम
वह मरा नहीं था

तुम्हें लगेगा कि वह वैसा लगता भर था
अहसास का यही फर्क होता है
पुल पर चलने के पहले
और चलने के बाद

4.12.97

जिन्दगी से मुठभेड़ करते

कई दिनों से अखबार में
छपता रहा था यह दिन
आज ही पुरस्कार बाँटेंगे मुख्यमंत्री
नाच-गा रहे हैं अंग्रेजी स्कूल के बच्चे
बड़ी हसरत और हौसले से नींद में देखते हैं बच्चे
कि कल जब होगी वर्षा तब नहीं भागकर जायेंगे वे
खँडहर बने स्कूल में
इमली के पेड़ के नीचे जो पढ़ते हैं
कुलुपटांगा के बच्चे
वे पढ़ते कम संघर्ष अधिक करते हैं
जिन्दगी से मुठभेड़ करते ये बच्चे
अपनी लिखत को मिटाते हैं
वर्षा के पानी से
पानी में नहीं भींगती केवल देह
भींगती हैं उनकी इच्छायें
झाँक लेते हैं कभी-कभी वे शिक्षिका की आँखों में
जहाँ उमड़ता होता है ममता का सागर
पर बेहतर कुछ भी नहीं कर पाने की दयनीयता
गाँव के सिवाने पर वर्षा से भीगती हुई वह
देवी की मूर्त्ति लगती है बच्चों को
मुख्यमंत्री जी, कुलुपटांगा को ले जाइये जमशेदपुर
मजबूत छतवाले स्कूलों में
पढ़ेंगे यहाँ के भी बच्चे

खेलेंगे क्रिकेट, फुटबाल
घूमेंगे चौड़ी-पक्की सड़कों पर
इनके पाँव में नहीं लगेगा कीचड़
अपने बाप की तरह
खेती पर गुजर-बसर करते हुए
अलग नहीं हुए वे कभी कीचड़ से
कभी सूखा, कभी बाढ़, भुखमरी,
बीमारी, तबाही.....
मजबूत पाँवों से ठोस जमीन पर चलते हुए
बाँस की कोंपलों की तरह
फूटेंगे वे
देवदार बन जायेंगे
आकाश छू लेंगे उछलकर कभी
कुलुपटांगा में तब नहीं रोयेंगी माँएँ।

7.3.05

अभी भी दीखती हैं

चिड़िया के बैठकर उड़ते ही
जिस तरह उड़ते हैं बिजली के तार
या रस्सियाँ
जिस तरह गमकते हैं बहुत-बहुत दिनों तक
इत्र के दाग
या फिर दीखती रहती है बेटी की सूनी मांग पर
सिन्दूर की दमक
और भी सूखे पत्तों के झर जाने के बाद भी
टहनियों पर होते हैं उनके होने के निशान
या फिर मरीधार पर उड़ते रहते हैं
बगुलों के पंख
कुछ ऐसा ही अनुभव है
तुम्हारे नहीं होने के होते हुए क्षणों में
अभी भी दीखती हैं
दरवाजे की साँकल पर तुम्हारी उंगलियों की छापें
किताबों के पन्नों पर तुम्हारी
आँखों के रंग
और तुम्हारे पूरे के पूरे होने की उम्मीद
तुम्हारे पहने गये कपड़ों में
कहाँ मरा था वसन्त तुम्हारे लहू में
शरद का सारा साम्राज्य बिछा था
तुम्हारे माथे पर

तुमने खोल दिये स्मृतियों के इतने दरवाजे
कि होने से अधिक है
तुम्हारा नहीं होना।

[स्मृतिशेष सुशान्त के लिये]

15.9.2003

दौड़ लगाता बच्चा

मेमने की तरह उछलता
दौड़ लगाता है बच्चा
सड़क के किनारे-किनारे
बूढ़ा बाबा उसके पीछे-पीछे जाता है
अपने कन्धों को सहलाता
बुनी जा रही है सड़कों पर—
बच्चा के पैरों की छोटी-छोटी छापें
बूढ़ा उन छापों को उठाता है
अपनी साँसों के सिरे पर
अपनी आँखों में भरता
और देखता है वह
फूटते हुए
रोशनी के अजस्र झरने
अपने भविष्य के अँधेरे
खुरचते हुए।

5.6.'93

रोटी के पेड़

गाँव के सिरे के घरों के
सामने बहती हुई छोटी नदी
जो सूखी रहती है गर्मी में
और अब झौआ के पौधों से भरी
बाढ़ से उमड़ी है–
धार से कुछ दूर
किनारे-किनारे
बालू पर बने बाँस की बाड़ पर
भूख से अकुलाये उठंगकर दाब रहा है
पेट को नगेसर
पानी से अलग
सोचता है आँखें गड़ाकर धार पर
साबुत गेहूँ निगला करेगा वह
पेट में उगेंगे गेहूँ के पौधे,
रोटी के पेड़
और सतायेगी कभी नहीं उसको
भूख की ऐंठन अँतड़ियों में.....
कुहराम मचा है भोला सिंह के खलिहान में
अकेला नहीं, अपनी जमात के साथ
जुटा है वहाँ नगेसर।

24.10.'92

●

माँ को खत

चूल्हे में बची हुई चिनगारी
को देखती हुई
माँ को लिख रही हूँ
कि नहीं होता अब कोई शिशिर-हेमन्त
जब गाती है चिड़िया
खुले आकाश की ओर मुँह किये
और हँसता है बच्चा
फूँकता है मोमबत्ती
अपनी पहली वर्षगाँठ पर
पूजा पर रखे अक्षत की तरह
जब होती है माँ की हँसी
सिन्दूर की तरह दमकता है उसका पूरा
चेहरा
तभी वसंत होता है
तभी
और कुछ नहीं होता।

10.4.'85

उगी है धूप

पत्तियों में दबी थी धूप
जो उभर रही है धीरे-धीरे
इस धूप में बहुत कुछ है
जो बहुत देर और दूर तक
बदल देते हैं दिन के सर्वनाम
धूप जो काटती है
कुहासों की परतें
और खपरैलों से होकर
सरक जाती है पेड़ की
फुनगियों तक
पहुँचती है वहाँ भी
जहाँ माँ की गोद में
अंगूठा चूसता बच्चा
हँस रहा है बेसाख्ता
और फिसली जा रही हैं
माँ की अंगुलियाँ
बच्चा की तेलायी देह पर
माँ दिखाती है धूप
आज का दिन कितना खुशनुमा है—
कहती है
उगी है धूप—

तुम्हारे ही लिये
तुम्हारी हँसी की तरह
तुम हँसते रहो
कि खिली रहे यह धूप
तुम्हारी हँसी के लिये।

28.9.'90

●

दिपता हुआ चेहरा

अभी भी उतना ही ताजा है
पछिया की लपटों के बीच
खुले आँगन में माघ के पहले
बायें हाथ से लकड़ियाँ सुलगाते
दायें हाथ से मछलियों के तलने की गंध
बच्चों की खुशी
अपूर्व-यशी की खिल-खुल हँसी
तुम्हारा दिपता हुआ चेहरा
धधकती आग के सामने
उस ठण्ड में भी माथे पर ढलके हुए
पसीने
तब कितने खुले-खुले थे तुम
छोटी-छोटी खुशियों में
तुम्हारी आँखों के रंग—लाल-बैगनी-कत्थई
ठुकरा रहे थे तुम स्वर्ग की समृद्धि को
धरती के इस सुख के लिये
सपनों के बड़े-बड़े संसार
रच लिये थे तुमने अपनी साँसों में
कितने हरे-हरे लगते थे तुम
इन सपनों की कोंपलों में
जीवन रस से सराबोर
वही जीवन उतर आता है तुम्हारी परछाईं में
साँसें लौट आती है उनमें।

[सुशान्त की स्मृति में]

23.9.2003

देखना जरूरी है

आप तो गाँव में रहते हैं सरपंच जी,
पर गाँव आपमें नहीं रहता
आप पुलकित हैं
कि अब हासिल हो सकती है आँधी-तूफान
की पूर्व सूचना
गाँव के सिवाने पर इस बार फिर
लगा रही है सरकार
एक नया उद्योग
आप पढ़ते हैं अखबार में
कि गुजरेगा प्रधानमंत्री का हवाईजहाज
आपके गाँव के ऊपर से
शोर करते हुए दौड़ेंगे बच्चे
टूट जाएगा सन्नाटा थोड़ी देर के लिये
देखिये, देखिये सरपंच जी
देखना जरूरी है
कि कैसे शिकार हो रहे हैं कामगार
असमय मृत्यु के
भरती जा रही है जहरीली हवा
उनके फेफड़े में
बीमार हो रही है खेतों की हरियाली
एक नकली चमकदार ताजा हरापन
बिछा जा रहा है खेतों में
हर साल उजड़ती है आधी बस्ती

कीटनाशक के छिड़काव से
दाखिल हो रहे हैं अस्पतालों में
सालमन, रामधन, जुनैद और उनकी तरह के
सैकड़ों लोग
उन्हें खतरनाक बीमारी लग गई है, सरपंचजी
मरते जा रहे हैं ये असमय
इनके ही दम पर तो सरपंच हैं आप
मर जायेंगे ये तो !
पर आप क्या करेंगे
याद कीजिये पिछला चुनाव
सरपंच जी,
सरपंच जी !

6.4.2002

●

नयी बात नहीं

शव किसी युवती का है
इसलिये भीड़ है देखनेवालों की
उठानेवालें की नहीं
एक दूसरे का मामला बताकर
गाँव और रेलपुलिस का टालमटोल
कोई नई बात नहीं
जहाँ वह मिली है गटर में
वहाँ सैकड़ों किस्सों के सैकड़ों मुँह
लिखी हैं जाने कितनी कहानियाँ
उसके सिरहाने-पैताने
उसकी आत्मा में ईश्वर नहीं था
या उसकी आत्मा तक नहीं गया ईश्वर
वह सिर्फ देह थी, देह के साथ रही
देह लेकर मर गई
मनुष्य होने की आदिम परिभाषा
पर भी पत्थर रख गई।

10.5.2001

●

तुम वही खुशी हो

तुम्हारे लिये भी है यह धरती
यह आकाश
जिसकी पहचान बहुत बाद में हुई तुमको
कहते हैं, बहुत पहले
धरती धँस जाती थी तुम्हारे जन्म लेने से
मेरी दादी नहीं, सुधा की दादी कहती थी
यद्यपि समझ नहीं पाई वह
कि धरती सँवर गई थी उसके आने से
सबने देखा
धरती का धँसना
पर सँवरना किसी ने नहीं
बेटी, सुगंध हो तुम
देवता के माथे पर चढ़ा पहला जल-विन्दु,
वसन्त के कंठ में संगीत की तरह
चमक चिड़िया की आँखों की
गन्ने में जिस तरह बसता है रस
या कि नारियल में पानी
तुम वही खुशी हो
सुख हो शब्दातीत
जीवन मिला है घर को
तुम्हारे आने से
तुम्हारा आना जिस दिन रूकेगा

सचमुच उसी दिन धँसेगी धरती
इसीलिये तुम आओ
और बसो आँखों में
पुतलियों की तरह।

20.4.02

धरती का हरापन

पुरवा जब चलती है–
सूखने लगते हैं मौसम के होंठ
भीतर सूना पड़ा आकाश दरकने लगता है
ऐसे में बहुत सारी चीजें आस-पास होती हैं–
धुला या मैला आसमान
ठहरा या बहता हुआ पानी,
छत पर धुओं के टीले,
सीखचों पर रुके ढेर से उजाले
या फिर गुलदान में प्लास्टिक के कमल
या दीवार पर जगह-जगह झरा प्लास्टर
नया साल के कैलेन्डर में लहराती गेहूँ की बाली
या पुराने कैलेन्डर में जीवन-घुट्टी के विज्ञापन में
हँसता बच्चा
या फिर और कुछ
पर इतनी चीजों के बीच भी बेहद प्यारा
दीखता है धरती का हरापन
और बेहद वेधती हैं
गिने जाने की हद तक दीखती पसलियाँ
इन पसलियों को भी कुछ देता है–
धरती का हरापन ?

10.9.'99

फसल की किताब

उसकी आँखों में चूल्हे की धौंक,
भुनती मछलियों की गंध
उसके होंठ, उसकी साँस, उसके लहू में
अगहनी फसल की फुनगियों पर दौड़ती
हवा के नृत्य होते थे
सूर्य और धूप की बातें करता था
हल जोतकर आया वर्षा के गाछ की तरह
हरियाया उसका 'आदमी'
आटा गूँथना छोड़
वह चली जाती थी उसके पास
सुबह के मैदान में जैसे हवा दौड़े
दौड़ने लगते थे उसके सपने
फसल की पूरी किताब लगती थी वह
जिसको हवा में धीरे-धीरे खुलते
देखता था अपने मुख पर ओस लपेटे
वह।

5.5.'97

आँखें बरसात में

सवालों के मकड़जाल में
फँसा है
और गाँवों की तरह ही आसंगी गाँव
दुनिया के बाजार में कहाँ फिट बैठता है
पाँच सौ घरों में चार चापाकल
सैकड़ों एकड़ जमीन मुँह ताकती है
बादल का
बहुत मिहनत से उपजता है धान
हाट पर ही देखते हैं लोग
गेहूँ, मकई और चना
बिकते हुए
और भी बहुत कुछ बिकते हैं वहाँ
जिनको नहीं ले आ पाते लोग घरों में
जाने कितनी सँझवाती बीत जाती है
बिना दिया बाले
बाँस पर टँगी पोटली की तरह
हिलती है कच्ची सड़क पर चलते
लोगों की आँखें बरसात में
लोग घर से सड़क, सड़क से जंगल
हुए जा रहे हैं
विकास की गंगा बहने के इन्तजार में
नदी पार से दर्जन भर गाँवों के मजदूर
काम पर जाते हैं इस नदी के रास्ते ही

तैरकर पार करते हैं हजारों लोग
ईटागढ़, कमलपुर, हल्दीपोखर जैसे
दर्जनों गाँव हैं नक्शा पर
नदी के पेट से कभी बाहर होते, कभी
डूब जाते
माँ की दवा, पिता की खैनी, बहन की साड़ी
और भी बहुत कुछ लाने के लिये
लोग आते-जाते हैं
साइकिल को कन्धे पर लादकर
जमीन गई उनकी, मुआवजा नहीं मिला
कहाँ पूरा हुआ एक आदमी को
नौकरी देने का वादा
कुछ नहीं हुआ ऐसा
होने के लिये भी कुछ होना पड़ता है
अब तो सुनगुन हो रही है घेरने की
गाँव आनेवाली सड़क को भी
नदी के पेट में ही निशान बनते जा रहे हैं
पैरों के।

6.1.2000

पढ़ी-लिखी नहीं है बेला

बालीडीह की कच्ची सड़क पर चलती हुई
बेला ने कभी नहीं देखे
अपने पाँव
जब भी देखा अपने हाथ की
मलिन रेखाओं को
पढ़ी-लिखी नहीं है वह
फिर भी
रेखाओं पर आँख टिकाये
सोचती रहती है
कि कभी पक्की सड़कों पर भी
रखेगी पाँव या नहीं
आसान नहीं रहा बालीडीह से पोटका जाना
इतना दुख नहीं था जब पगडंडी थी
सड़क पर गड्ढे, इस पर जलजमाव, उसमें फँसते पाँव
कई बार गिर जाती है बेला
ठोकर लगते ही
याद आता है जिनगी में कहाँ-कहाँ गिरी वह
पहली बार तो धनरोपनी करते समय
भरी बरसात में
जब परधान के बेटे ने देखा उसको
बड़े पास से
जाने मुँह छुपाया उसने कितनी बार
हरी साड़ी में

हाट करने में एक बार तो
दूसरे शनिवार को आसिन के
जब लौट रही थी घर
छोटी मछली खरीदकर
रास्ते में मिला था हँसी फेंकता हुआ सवना
बचते-बचाते जाने में फिसलते-फिसलते
बची थी वह
सहानुभूति में हाथ रख ही तो दिया था
सवना ने देह पर
सिहरने की जगह जड़ हो गई थी वह
उस बार भी जब घंटों लाइन में रहने पर भी
नहीं आया उसका नाम
लालकार्ड के लिये
अगले दिन खंडहर बने स्कूल में
बुलाई गई वह
तो फैसला किया उसने
और छोड़ दिया मरना
हजार जिन्दगियाँ हैं इस गाँव में
इस कच्ची सड़क और जर्जर बिजली के तारों की तरह
सड़क खराब हुई
चार पहिया चलानेवालों से
मजदूरों ने बाबुओं के साथ
मिलकर चुराई रोशनी
बेला गाँव की कई औरतों के साथ
कल हल्दीपोखर जाएगी।

15.9.2004

●

छोटे-छोटे दुख

दुख बड़ा कर गया ऊँची मीनारों से
पर खुशी—अकेली कर गई
काट गई अपने अपनों से
गुनगुने पानी सा मन
पिछली यादों से पिरा गया
नहीं रहे वे लाल-लाल मेघ
मेघों की परतों से निकला दहकता सूरज
मन जिसकी आँच में पढ़ता दुखों के छन्द
और तन
गंधों के नाम पर ढोता कुहरा
अभावों के दिन
डरी हुई रातें
सुविधाओं के नाम पर स्वीकृत घातें
इतनी विसंगतियों को जीना और खोजना
अहं के खोये अर्थ
लगता है अपना ही मन भीड़ बन जाता है
खोजने लगता है अपना ही चेहरा
मुट्ठियों से भरे-भरे प्रश्न रिसते हैं रेत से
तब और भी उभरती हैं
पड़ोसवाली बुधिया की रोई सी आँखें
बीच गाँव की लड़की लालपरी की जूही भरी
हथेलियों का दर्द
और लगता है—
छोटे-छोटे दुख ही सिलते हैं
हमें नये सिरे से।

5.2.'90

●

उजला भिनसार

तब दिन बहुत छोटा था
और समय !
बाजीगर की तरह आकर माथा फेर जाता था
छोर नहीं होते थे खुशगवार सपनों के
अपने पर अपना ही जोर नहीं था
तब मुनिया तीन बरस की थी
सब कहीं होती थी उजले भिनसार की महक
मिट्टी की भीत पर खिंची मोर-मछली की तरह
ऐसे ही कई-कई दिन
दिनों के ढेर
आसपास का सारा कुछ
अब मुनिया पार कर गई पाँच की उमर
किरासन डाला चूल्हा जला नहीं
बिना दियासलाई के और भर गई नथुनों में किरासन की गंध
सब कुछ तो थे, पर सच एक ही था
कि अपने भीतर कहीं कुछ
बिना चीनी की चाय की तरह फीका-फीका था
और छुई नहीं जाती थी बरौनियों पर थमी ओस
ऐसा क्यों हुआ
वह कौन सी दीवार थी जो ढही नहीं थी
और मुनिया स्कूल नहीं गई थी।

5.6.'89

●

रास्ता दिखाया दुर्दिन ने

धान कूटते, सुखाते, झाड़ू लगाते
और खाना बनाते
वह जरूर देखती है आसमान
एकबार
आसमान जितनी ऊँचाई पर ही
बसते हैं उसके सपने
जो कभी नहीं उतरते उसकी आँखों में
उतरते भी हैं तो नींद उड़ जाती है
भरा ही नहीं पानी कभी उन आँखों में
पैंसठ बरस की होने आई वह
भरा है विद्रोह जिस एक बात के लिये
उसके मन में—
वह है उसका नाम
जन्म से ही विकलांग वह
माँ-बाप ने नाम रख दिया—लूली
नहीं सुहाता उसको अपना नाम
स्कूल जाते हुए कितनी बार
लिख-लिखकर काटा उसने—
लूली कुमारी.....कुमारी.....
पिता की मौत, घर की गरीबी ने
पढ़ने भी नहीं दिया तीसरे वर्ग से आगे
फिर तो रास्ता दिखाया दुर्दिन ने

'लेदरा' सिलते गाँव के लोगों का,
सिलाई-कटाई करते अँगिया-घघरी की
सुबह से शाम, शाम से सुबह हुई
मिहनत की मूरत लगती है
कैंची चलाती, सुई में धागा पिरोती वह
किसी का साथ नहीं माँगा उसने,
न किसी के कोमल वचन का इन्तजार ही किया
वैसे कुछ लोगों की भीड़ लगी उसकी झोपड़ी के आगे
तस्वीरें उतारीं उसकी
सहयोग और आश्वासन के फूल भी बरसे
कई बार मीटिंग, जुलूस, प्रदर्शन का हिस्सा भी बनी
पर वह अब भी केहुनी से ऊपर नदारद हाथ लिये
दिखाती है आइना समय को
कुछ नहीं मिलने का रंज नहीं
कुछ है तो यह कि
बूढ़ी हो रही है वह
कैसे उठेगा अपना बोझ
अब क्या करेगी
किसी ने नहीं सुना उसको गाते
कौन रंग मुंगवा.....
उसने कहा तो यह कि कैसे रख देते हैं
लोग ठुठी, कनही, बौनी बेटियों के नाम
उसका नाम जुही, गुलाबी, चन्दा कुछ भी होता
लूली, तो नहीं।

7.7.'92

●

मद्धिम वसन्त

हम तुम्हें भूलना चाहते हैं
भूल जाना चाहते हैं तुम्हें
अपने साथियों, अपने रातों, अपने अँधेरे, अपने खेतों के बीच
धीरे से छोड़ देना चाहते हैं तुमको
हमें तुमसे नफरत है–
तमाम तरह की दहशतों !
अपने रक्त चुआते जिस्म को
दूर ले जाना चाहते हैं तुम्हारी बाँहों से
वहाँ जहाँ तुम्हारी उँगलियाँ नहीं पहुँचें
एक काला जंगल उग आया है
हमारी पीठों पर
नुकीली पत्तियाँ घुस गई हैं हमारी अंतड़ियों में
और साँय-साँय करने लगी है भारी हवा
इस जंगल को अपनी पीठ पर लिये
किस भरी सड़क से गुजरें हम अपनी हथेली खुजाते
सबने देखा था
किसी विरवे की तरह उठे थे हम
पहले हरेपन की लाज हममें भी उतर आई थी
सोच ही रहे थे हम
कि भीतर के मद्धिम वसंत का क्या किया जाए
तुमने पहले देवताओं की लिखत को मिटाया
हमारी हथेलियों को धीरे से खोलकर
और सड़कों की दागों भरी चादर में
फिर से मिला दिया हमारे जिस्म का लहू
मरने पर भी हमारा वसंत जीवित ही था हमारे भीतर।

6.10'86

●

पानी के सपने

रात भर जगते हुए सोते हैं बच्चे
उठ-उठकर देखते हैं कचपचिया तारे
आपको पता है, फरवरी से ही बिला गया पीने का पानी
मुख्यमंत्री जी !
हाहाकार करती हैं घर की औरतें
और खेत में माथा पकड़े हुए किसान
सूख गये हैं कुएँ और चापाकल बस्ती के
काम पर जाने से माँ-बाप के
चार बजे रात से लाइन लगाते हैं बच्चे
डेकची में भरकर लाते हैं पानी
दूर-दूर से
आपके सरोकार में यह समाचार नहीं
कि पाँच हजार आबादी की इस बस्ती के
दो चापाकल पस्त हैं इन दिनों
धरती ने दिखा दिया है अपना सूखा कलेजा
सालों भर दूर-दराज से लाते हैं पानी
ऐसे कितने ही घर हैं बस्ती में
सवना, सालखन, चानमुनी जैसे कितने ही बच्चे
प्यास समा गयी है जिनकी आँखों में
चम्पिया जैसी कितनी ही औरतें
और शंकोसाई की कितनी ही बेटियाँ
स्वर्णरेखा जाना पड़ता है जिन्हें
ऊबड़-खाबड़ रास्ते में धूप से नजर मिलाकर

नहाने के लिये—मुख्यमंत्री जी—नहाने के लिये
मेदनी का ब्याह नहीं होगा
उम्र से पहले पक गये हैं उसके केश
खेतों में मकई के बाल तो इतने पहले पकते नहीं
घर के काम से भी ज्यादा समय लगता है
पीने का पानी लाने में
अभी भी पैर की चोट से नहीं उठ पाती है
सुनाराम की मँझली बहन
पूछिये, इस बदहाली में जीती हुई औरतें,
बच्चे, लोगबाग के साथ क्या होता है
जब रात भर सपनाते हैं पानी के सपने
और अँधेरे में नापते हुए नदी की दूरी
जब टूटते हैं उनके पाँव
मुख्यमंत्री जी, पौ फटने से पहले
क्या हुआ उस भरोसा का
जो हवा में लहराया और दम तोड़ गया
आपको किसी रिश्ते की आहट बेचैन नहीं करती
माँ-बाप की आँखों की पुतलियाँ हैं ये
दूर-दूर से माथे पर पानी ढोकर लानेवाली
बेटियाँ
खेत में घुटने से ऊपर उठती हुई फसल की तरह बच्चे
पढ़ने की बजाय ढो रहे हैं पानी
मुख्यमंत्री जी !

8.04.06

●

नींद में झुकी जा रही लड़की

रात के उतरते ही
जब भीतर तक दहला देनेवाली
ठण्डी हवा चलती है बाहर
पीली रोशनी पहनते छोटे बल्ब के कमरे में
किसी पत्रिका में आँखें गड़ाये
आकाश में चाँद उतरने का
इन्तजार करते हो तुम
तुम्हारी नाक से होती हुई
फूलों की गंध
तुम्हारी देह बन जाती है
आ जाते हैं ढेर सारे बादल
तुम्हारी धुन में संगत करते हुए
और इधर
अंगोछे के पालने में लेटा बच्चा
जोर-जोर से रोता है
जमीन पर बैठी एक लड़की के सामने
तुम चुरूट पीने लगते हो
आराम से अधलेटे पलंग पर
तुम्हारे ठठाकर हँसने की आवाज आती है
और इधर
बच्चा के सिर पर अँगुलियाँ फेरती लड़की
नींद में झुकी जा रही है
थक गई है शायद

लकड़ियाँ तोड़ती, पानी भरती,
बच्चा को अगोरती
बच्चा चुप होने का नाम
नहीं ले रहा
रोते-रोते खाँसने लगा है वह
किसी लोरी की याद करती
लड़की की आँखों में रंग-बिरंगे कपड़ों में
सजे-बजे, हाथों में खाने के डिब्बे लिये
खिलखिलाते हुए बच्चोंवाली बस उतरती है
चुरूट पीता साहब उसको
ब्लैकबोर्ड और
रोता हुआ बच्चा हिन्दी की
बारहखड़ी लगता है।

14.2.'90

●

कौंधता हुआ घोंसला

ऐसा नहीं कि उसके पंख फड़फड़ाये नहीं,
मुँह किये आकाश की ओर वह उदास नहीं हुई
धूप का रंग पढ़ना
जानती थी चिड़िया
इसलिये और भी चुप, बहुत चुप थी वह
सूनापन था आँखों में
पर साँसों में हलचल
हलचलवाला सूनापन
बेचैनियों से भरा
उसकी आशा में कौंधता हुआ घोंसला
और घोंसले में दो बहुत कोमल सपने
नितान्त अपने
चिड़िया न उड़ती है न घोंसले में
जाती है
अपनी जान से भी बेहद प्यारा घोंसला
कई जन्मों की इच्छाओं का
हरापन लिये
तिनकों से जुड़ा घोंसला
चिड़िया कहीं नहीं जाएगी
देखती रहेगी
आँखों से उठाकर होठों से छुएगी

बेहद सुकुमार सपने
और भी सघन होंगे
फलेंगे वृक्ष की तरह
बेहद सुकुमार सपने

25.2.'87

●

नदी

नदी जो लाती है हमारे लिये शान्ति
रचती है कविता
उगाती है फसल
और गाती है भैरवी
कहीं बहुत अपनी है उन-उनसे
जो उगाते हैं काँटे
बोते हैं पत्थर
तोड़ते हैं हृदय
और बहाते हैं गंदी नालियाँ सड़कों पर
साँझ होते ही नदी
सँजोती है फूल
बालती है चौमुख दिये
होने लगती है समुद्रोन्मुख
समुद्र ज़ो उसकी शान्ति को सहेज लेगा
मिला लेगा अपने ज्वार में
समेट लेगा उसका संगीत
अपनी अनभिव्यक्त इच्छा के हाहाकार में
और किसी जाग्रत शिशु की तरह
भर लेगा अपनी पलकों पर जागरण
जिसको अपनी सुमिरनी पर
उतारेगी नदी

4.12.2001

●

साँझ

गुजर गई है साँझ
सीटी बजाते झुग्गियों के नंगे गदबदे बच्चों की तरह
छोड़ गई है रास्तों में
ढेर सारे गुल्ली-डंडों के निशान
दो-चार चित्ती कौड़ियाँ
टेढ़ी-मेढ़ी, गोल-चौकोर घुच्ची
लाल-पीली-हरी-नीली काँच की गोलियाँ
आड़े-तिरछे पैरों की छाप
और सड़क के पूरबी छोर पर बने मकान में
रहने वाले बच्चों की सूरत और सीरत
की पच्चासवीं कार्बन कापी करते हुए
चेहरों के उदास शिवाले
रख गई है साँझ
भारी-भारी साँसें लेता जंगल
किसी थके खोमचे वाले की तरह
और थमा गई है कई सारी गिरहें
जिन्हें खोलते ही खाली डब्बे ढनमनाते हैं
बासी कटे प्याज और अदरक की गंध
भर जाती है हवा में
कल अचानक ठोकर लगते ही
झुनझुना गई थीं पैर की उँगलियाँ
आज उसी तरह की झुनझुनी
नस-नस में भर गई है साँझ
झुग्गी के बच्चों को कमल की पंखुड़ियों से
मुँदते हुए देखती है साँझ।

5.6.'86

●

हमारा हरापन

ये अपनी आँखें
हरदम साथ रहनेवाली
नहीं देखतीं
कि कैसे निश्चर्म हो रही है
हमारी देह
कैसे निष्कवच हो रहे हैं हम
जन्म लेने के पहले ही दिन
अधूरा हो जाता है
धरती से हमारा लगाव
आओ अभी ही आओ
और आँखों को कवचकर
धूप से तितली नहीं; कमान गढ़ो
फिर कोई नहीं लील पाएगा
हमारा हरापन !

16.10.'87

●

कहना जरूरी है

डरो मत
साहस करो और कहो
कि पत्तियों से ही
सघन दीखते हैं पेड़
मजबूत होती हैं उनकी जड़ें
ये जब चाहें
उगाते और गिरा देते हैं
पत्तियाँ
शब्द अभी सक्रिय हैं
इसलिये अभी ही कहना जरूरी है
बहुत सारे काम हैं
जो करती हैं पत्तियाँ
इन पेड़ों के लिये
छाँह करने, हवा देने
संगीत भरने तक
भेजता है वसंत जब
प्रेम का संदेश
तो ये पत्तियाँ ही होती हैं
उनकी हरी-हरी चिट्ठियाँ।

5.5.'85

●

माँ ने लिखा है

टिमटिमाती ढ़िबरी की लौ में
माँ ने लिखा है—
दूर तक छाये धुएँ और भाप के बादल
की ऋतु शिशिर नहीं
घने कोहरों में ढँके
पेड़, घास, बड़े-बड़े मकान
और सब कुछ हो रहे अनदिख की
ऋतु भी शिशिर नहीं
यदि होती
तो क्यों भुने हुए चने की तरह
फटी-फटी हमारी आँखें
एक धमाका पर चीखकर
साध लेती लम्बी चुप्पी
रेंगती केवल परछाइयाँ—
गाँव से शहर जानेवाली सड़कों पर।

10.2.'84

पेड़ों की शक्ल में लोग

दिन के रूमाल पर मन की खुशी का
कशीदा कढ़ा हुआ था
जब निकला था रोशनी का जुलूस
रास्तों की दोनों ओर
पेड़ों की शक्ल में खड़े थे लोग
छाती पर हाथ बाँधे
किसी ने नहीं देखा
कि तेजी से गुजरता रोशनी का कारवाँ
छोड़े जा रहा है सड़कों पर
ढेर सारे स्याह अंधकार
जिसमें डूबी जा रही है बस्ती की बस्ती
लिख दी गई हैं लोगों की आँखें और इच्छायें
कालिख की लिपियों में
जहाँ-जहाँ दिखते हैं
रथों के निशान
वहाँ-वहाँ बेजुबान हो गई हैं
पीढ़ियाँ
किसी की आँख नहीं पढ़ पाई
यह अकाल तांडव !

12.1.'80

●

जानता है समुद्र

जो निजता दूसरों को घुलाती है
पर्यवसित करती है स्वयं को भी
जानता है समुद्र
कामी नहीं वह नदी के रूप का
कि आइना बना रहे उस पर
सहलाता है अपनी आत्मा से,
लीपता है दुलार से
चाहता है सम्पूर्ण कामना से
नदी को
चाहता है वह
छुए तक नहीं कोई गंदा हाथ
उसको
यदि होता है ऐसा कुछ
तो भयावह आत्मग्लानि
में डूब जाता है
एक विस्फोट सा होता है
जो उधेड़ देता है
पूरी नृशंसता से
उसके रेशे-रेशे को।

6.3.'81

कितने भी चिह्न

नदी !
चाहे कितने भी चिह्न हों
तुम्हारे होठों पर
अतीत के
पर उनसे कोई सरोकार नहीं
सूरज का
वह खुद को रचा पाता है
तुम्हारे होठों के
स्वाभाविक रंग पर

24.10.'88

●

पृथ्वी से संवाद

संवाद चल रहा है
नारियल के झुके पत्ते का
पृथ्वी से
गुमसुम ताक रहा पीपल
अमरूद की टहनी पर बैठी मैना
स्थिर नहीं है एक पल को भी
कुछ देर पहले की हवा
अभी-अभी गई कहाँ न जानें—
दीवारें अब नहीं रहीं उजली और साफ
लिखे रहते हैं कुछ नारे, कुछ विज्ञापन—उनपर
दीखने लगा आसमान में
मौसम का स्वभाव
पानी होने लगा है ठण्डा
नहीं रहा जाता अब देर तक
घुटने भर पानी में
[illegible]
इन्तजार धूप का
उसको अच्छे लगते हैं, बहुत अच्छे
पृथ्वी से संवाद करते
पत्ते नारियल के।

19.10.'96

चूल्हा नहीं जलता

सालखन, सुरू, देवना, गुरुचरण
कोई नहीं जानता
कि क्या होता है विकास
सड़क, पानी, बिजली, अंत्योदय, इन्दिरा आवास,
वृद्धा और विधवा पेन्शन–
कुछ भी नहीं मिलता–इस गाँव में
हजारों, लाखों गाँव हैं पोगरोसाई की तरह
जहाँ छटपटाते रहते हैं लोग
उस दिन ही तो हुआ कितना हल्ला-हंगामा
बिजलपुर में
डुमरी गाँव जहाँ चूल्हा नहीं जलता
रोजाना
पंख झर गये हैं चिड़िया के
उपवास रखकर
कोशिश की तिग्गा ने आत्महत्या की
पुलिस ले गई पकड़कर
अपने बीमार बेटे से हाथ धो बैठा
सुरू जब तंगी में
अब भारी पड़ रहा है पेट पालना
अस्सी-पचासी का लगता है
पचपन बरस का सुरू
अब कहाँ रहा खेत को मेघ पर भरोसा
जो नहीं कर पाते–

भूख का विरोध
अब करेंगे—
पंचायत चुनाव का विरोध
दौड़ जाएगी भूखे-नंगे की फौज
जब बनेगा खरकाई पर पुल

9.6.'90

●

लालिम पत्ती

इस घने कुहरे में जो नहीं दीखता
मगर जो वहाँ है–
उस आधी-अधूरी जिन्दगी का पूरा संसार
मेरी कलम की नोंक पर थरथराता है
जब भी तुम्हारे लिये एक कविता लिखने की
सोचती हूँ
वसंत की कटी हुई जीभ
एक टूटी लालिम पत्ती
खिड़की की छड़ पर
उदास बैठी है
क्या होगा उसे देखकर
हकलाती हुई मैं सोचती हूँ
जो हाथ वसंत लाने की जिद में
जुट गये थे अपनी सम्पूर्ण नीली नाड़ियों के साथ
वे उस वक्त किसी कविता की कोंपल
नहीं बन सके
इस वक्त भी किसी कविता की कोंपल
नहीं है मेरे हाथ में
मेरी कलम की जड़ों पर थरथराती
मेरी आत्मा है।

24.9.'83

●

फिर एक दिन

जब रोने की बारी उसकी थी
और चुप कराने की उसकी
तब सिर्फ वह रोई
चुप कराने के बदले गूँजी एक खूँखार आवाज
उसके कानों में
एक-एक दिन गुजर गया पिछला एक बरस का
उसकी आँखों में
सन्नाटा खिंचा रहा
और फिर एक दिन
दिखे सिमरिया घाट पर
एक स्कूल बैग, एक स्लेट, एक कॉपी
एक प्रैक्टिकल बॉक्स
कॉपी पर लिखा सिर्फ लाल रंग से—पवन
पराठा और भुजिया—लंच बॉक्स में
और चार-पाँच वर्ष के बच्चे की
एक जोड़ी चप्पल
गंगा-स्नान ही नहीं, पूजा भी की थी
उसने घाट पर
फिर कूद गई गंगा में
साड़ी से बाँधकर बच्चों को अपनी देह में
खोजा मछुआरों के दल ने बहुत
अंतर्लीन हो गई वह गंगाजल में
इस निष्चर्म कर देनेवाली व्यवस्था को
घृणा की आग देकर।

28.6.'92

उठता है धुआँ

अपनी उम्र का पचपनवाँ बरस
गुजारती हुई
घुटने के दर्द से कराह उठी है
माया
आँखों से टप-टप टपकता है
इन्दिरा आवास का इन्तजार
पोटका के एक गाँव की माया
नाप चुकी है पचास बार से भी अधिक
ब्लॉक तक जानेवाली टूटी-फूटी गड्ढेवाली सड़क
खराब हो चुकीं उसकी आँखें
पच्चीस-तीस वर्षों से दिये जाते रहे
आवेदन जाने कहाँ चले गये
खा-चबा गये बड़ा बाबू
या चले गये किसी गटर में
अभी तक नहीं आया नम्बर
ऑफिस से लौटते गिर ही गई रास्ते में
उस दिन
छटपटाने लगी वह
आँखों पर लगी गहरी चोट
आपरेशन के लिये कहता है डाक्टर
गरीबी और तंगी में क्या सोचे !
दिखाई नहीं देता
लछमन कैवर्त—उसका बेटा

जोहता है बाट सरकारी सुविधाओं की
इन्दिरा आवास तो क्या
नहीं मिला—राशनकार्ड, लालकार्ड कुछ भी
जिस दिन मिलता है काम
उसी दिन जलता है चूल्हा
उड़ी हुई छान के नीचे
किच-किच घर की ओरियानी में
उठता है धुआँ
आँखों से भूख को बरजते हुए
देखता है बगल में खड़ा लछमन का बेटा।

27.4.2005

फूलवाली

कहाँ रहती है फूलवाली लड़की
कितने फूलों के नाम याद हैं उसको
जूही, चम्पा, चमेली, कनेर, गुलाब, रातरानी
पर कभी नहीं लेती वह रजनीगन्धा का नाम
बड़ी लगन से उगाया था उसको
जब बड़ी हुई, खिलने को आई
तभी उस पर आँख लगी उस घुँघराले बालोंवाले लड़के की
कभी नहीं खेलने गई जिसके साथ वह
पढ़ने भी नहीं
पर हवा जिस तरह
प्यार करती है सुगंध को
या नदी किनारे पेड़ को चिड़िया
वैसा ही था कुछ दोनों के बीच
अनपहचानी-सी पहचान
अघटित घटना-सी
फूलवाली खड़ी भी नहीं होती
पूरब की ओर मुँह करके
सालती है उसको रजनीगंधा की सूनी डाल
अपनी अनुपस्थिति में भी उपस्थिति बनाती हुई
बेहद भावुक है वह
यद्यपि जानती है कि कितना कठिन है
भावना का बचा रहना
इस वस्तुजगत में

20.4.02

●

हँसी की गूँज

नहीं आओगी तुम सतरह के पहले
यद्यपि जानता हूँ
प्रतीक्षा करूँगा तारीख आठ को तुम्हारी
पत्र देना कि पत्र ही अवलम्ब होगा इस समय
अपने चमन में पहुँच गयी होगी तुम
मुक्त चिड़िया की तरह फुदकती
इस शहर के पिंजड़े से दूर
बचपन की चिरपरिचत दुनिया में
यहाँ की सारी थकान और तनाव से दूर
सखियों और बालबंधुओं के बीच
पाँव से उतर गयी होगी
रास्ते की धूल
विवाह, द्विरागमन के लाल-पीले किस्से
नूपुर के रूनझुन भरे संगीत
आज से इस शहर में होंगे
सिर्फ धूप, धूल-धुआँ,
पछुवा के झोंके
और पत्थर सी ठण्डी रात
अच्छा होगा यहाँ से वहाँ का मौसम
तुम्हारी खिल-खुल हँसी की गूँज
और मत्स्य खंडों के तलने की गंध
महसूस कर रहा हूँ मैं यहीं से।

10.8.'78

●

इच्छाशक्ति

साँस अब भी चल रही थी
और बची थी देह में गर्मी
इच्छा शक्ति ले रही थी हिलोरें
ऐसे ही हजारों-लाखों लोग जीते हैं यहाँ
जिनकी साँसें चलती हैं
और देह की गर्मी में बसा करती है इच्छाशक्ति
इस शक्ति के दम पर वे
उठाते हैं बोझ, तोड़ते हैं–
पत्थर-पहाड़।

19.1.2002

जीने लायक पृथ्वी

उगने लगे थे पेड़ पर पत्ते
और उड़ने लगी थी चिड़िया
उन दिनों जब लम्बे समय से
बात नहीं हुई थी तुमसे
चिड़िया ने दाना चुगाया अपनी बच्ची को
पहली बार
तो याद आया.....
आई थी जोर की आँधी पिछले ही वसंत में
टूटकर बिखर गये थे फूल
खिसक गये थे जगह से कितने गमले भी
कहा था काका ने उसी दिन
कि कागज दबाकर रखो
नहीं तो उड़ जायेंगे
गन्दे होंगे वे धूल-गर्द से
और बरसा पानी तो
लाल-पीले-नीले ढबक जायेंगे
सभी अक्षर
नहीं रहेंगे जुगाकर रखने लायक भी
चिड़िया अपने से चुगेगी दाना
तो नया दिन होगा
हम सलीके से जीना सीख जायेंगे
अभी पिछले नवम्बर में
माँ ने कहा था—अभी ही जीने लायक है पृथ्वी
और सिखाये थे सलीके जीने के।

19.1.02

सुगन्ध सी बेटी

बहुत दिनों पर आ रही है बेटी
आतुर है माँ—कौन सामान कहाँ रखे
धुली चादर निकालकर रखती है
आइना को पोछती
सीधा करती है दरवाजे के परदे
तुड़े-मुड़े हैं जो कई महीनों से
दब गये हैं उसके कोने
खिड़की के पल्लों से
सुगन्ध है बेटी इस पूरे घर के लिये
घर जो फूल की तरह है
खिला-खिला प्रतीक्षा में सहस्रदल कमल की तरह
बेटी आयेगी, घर गुंजार होगा
कब से दबी सहमी उदासी भागने लगेगी
भींगे कबूतरों की तरह
बिना कुछ गिराये चली जाती थी जो हवा
अब रखने लगेगी कुछ धूल, कुछ पत्ते
हिलेंगे परदे खिड़कियों के
बड़े-बड़े फूल उसके सीधे हो जायेंगे
हालचाल पूछने आयेगी बड़की काकी भी
पड़ोस की
कबसे नहीं देखा है उसको—कहेगी
और कहने में भींग जायेंगी उसकी पलकें
कुछ अधिक नहीं कह पायेगी काकी

माँ सँभालेगी उसको
और अपनी आँखें भर लेगी
ऐसी होती ही है बेटी
आती है तब रुलाती है
जाती है तब रुलाती है
याद आती है तब भी
सुगंध सी आती है
चली जाती है थरथराते पत्ते की तरह

11.1.02

●

घास की गंध

कभी-कभी बोलने लगते हैं कान
और चुप रहते हैं मुँह
सब कुछ को अपने अंदर पका लेने के लिए
पकने पर लाल-लाल होते है ईंट जैसे शब्द
स्वयं उठाते है अपना पक्ष
तब कान सुनते हैं केवल
और शब्द मुँह की वसीयत होते हैं
गाय के मुँह में चबायी जा रही घास की गंध
उद्यान में लंबी छुरी से काटी जानेवाली घास
की गंध से अलग नहीं होती
इन गंधों को सूँघते हुए बोलेते हैं कान
और मुँह निश्शब्द होते हैं
पर्वत पर सोये किसी झरना की तरह
अनंत नाग की घाटी में अकेला पक्षी की तरह
सचमुच मुँह तब कितना
शालीन होता है!

5.7.2001

●

बहुत दिनों पर बरखा

दूर से आई है बरखा
थक गई है इसीलिए
धरती पर पसर गई है
अब अपनी कोमल हथेली से उसको सहलायेगी
बूँद-बूँद चुनेगी
माथे से लगा लेगी धरती
वृक्षों के पत्ते हरे-हरे होंगे, सिर उठायेंगे जो झुके थे
अभी कुछ दिनों पहले
बरखा को फुर्सत कहाँ कि अपनी दिनचर्या से बाहर
झाँके कि महावृष्टि में कैसे बह गई दुखनी की झोपड़ी
बिना छान के हो गई
पूरी की पूरी झोपड़पट्टी
सड़े-पुराने खर-पतवार, ताड़-खजूर के पत्ते
कुछ तो गिर गये, कुछ गल गये
बरखा को तो यही मालूम है कि जब लाल-पीली चूनर
पहनकर नाचती है वह तो खेतों में फूटते हैं अँखुवे
जाने कहाँ से आ जाते हैं
जंगल में मोर
मोरनी अपने पैरों का दर्द सहलाती है घर में
पत्तों पर बूँद-बूँद झरती बरखा पहुँच जाती है
वृक्ष की जड़ों तक
मिल जाते हैं उसको नये अर्थ, नये शब्द, नई शक्ति
सक्रिय करती है बरखा जड़ों को

सक्रिय करती है शब्दों को भी
इसलिये अमृता भी है बरखा
कितने रस, कितने प्यार भरे हैं उसकी आँखों में
इसीलिये तो अगोरती रहती है धरती उसका पथ
और थकने नहीं देती उसको जब
आती है वह।

5.7.2001

●

बथुआ का साग चुनते

आँधी के आते ही होने लगती है
पत्तों की बरसात
पिछवाड़े के पेड़ों से
जुटने लगते हैं बस्ती भर के बच्चे
इस बरसात में पत्ते लोकने के लिये
अभी ये सीख रहे हैं पत्तों की मार
जीना शुरू करने के पहले
नहीं जाते स्कूल उर्मिला के बच्चे
लुथु कैवर्त पाँव से लाचार है—उसका पति
गया तो था वृजबिहारी के ईंट-भट्ठे पर
काम से मना कर दिया मुंशी ने
मालिक को स्वस्थ पट्ठा आदमी चाहिये
मुनाफे के बाजार में
अपने घर के आँगन से बच्चों को देखती है
स्कूल जाते पानो
उर्मिला की बारह बरस की बेटी
उसका मन स्कूल चला जाता है
उन बच्चों के पाँवों में बँधकर
मोही भाग-भागकर चली जाती थी
पानो की छोटी बहन
भाइयों को जबसे जाते नहीं देखा
वह भी नहीं जाती

पहाड़ा याद करती है खेत में
बथुआ का साग चुनते
कहती है उर्मिला—पेट के दाने से ही सूझता है संसार
रोशनी आँख में नहीं, पेट में होती है
जो दाने से चमकती है
मालवाले का ही सुनता है बी.डी.ओ., सी.ओ.
इन्तजार है उर्मिला को चार बच्चों के बढ़ने का
वे बड़े होंगे तो चारों दिशायें
मिलेंगी उसके आँगन से
आठ हाथों की कमाई
रख नहीं पायेगी उर्मिला !

24.10.'2004

●

गंगाडीह की सड़क पर

मिट्टी में जीते हुए
मिट्टी हुये जा रहे हैं
गाँव के लोग
कच्ची सड़क पर जगह-जगह गड्ढे,
गड्ढे में जमा हुआ पानी
इस पर से गुजरते हैं स्कूली बच्चे
पढ़ते हैं ज्ञान ज्योति में
जब इस पर से गुजरते हैं भारी वाहन
तो उलीचकर चला जाता है खेतों में
बीच सड़क का पानी
और भी गहरे हो जाते हैं गड्ढे
मुड़कते हैं चलनेवालों के पाँव
खिंचती हैं माँसपेशियाँ
दुखते हैं घुटने
उँगलियाँ तुड़-मुड़ जाती हैं पाँवों की
इस स्कूल की टूटी छत और दरकी हुई दीवाल
देखने आइये और साथ-साथ चलिये
इस हाता और गंगाडीह की सड़क पर
बच्चों के साथ मुख्यमंत्री जी !
सच, इनकी माँसपेशियों और घुटने का दर्द
तब नहीं करेगा
कोई भी सवाल।

12.9.2005

●

चिड़ियों को नहीं मालूम

इस तरह भागी-भागी फिरती है हवा
जैसे फर्जी जमानत पर
छूटकर आई हो
उसको मालूम है कि नहीं
अभी भी बन्द है धूप
मौसम की जेल में
नामंजूर कर दिया गया है उसका आवेदन
पत्तियों की एकछत्र सहमति से
पर कहाँ है आवेदन
अता-पता नहीं है उसका
चिड़ियों को कुछ नहीं मालूम
खुश हैं वे
अब नहीं हिलती जोर-जोर से टहनियाँ
असमय हवा के नहीं बहने से
चिहुँक कर नहीं उठ जाते हैं
घोंसले में सोते उसके बच्चे
देखते हैं खुशगवार सपने
वैसे भी उनके बार-बार
आने-जाने से
हिल ही जाते हैं घोंसले
झूले का सुख आ ही जाता है
चाहे जितना भी कम
वैसे भी मजदूर-बच्चों को

कहाँ मिलता है सपनों से अधिक
झूले का स्वाद
भागती रहे हवा
इतना तो इस खुले में जीने के लिये
बहुत है।

14.5.2005

डुमुरडीहा में

रामनवमी चैन से मनी
हल्दीपोखर में
शामिल थे पाँच हजार लोग विसर्जन में
मुख्य पथ, चावल बाजार, दुर्गामन्दिर, कीर्त्तनपाड़ा
होते रंकिनी मन्दिर पहुँचा झण्डा जुलूस
हैरतअंगेज करतब दिखाये युवकों ने
हरिनाम संकीर्त्तन भी हुआ चौका में
विश्वशान्ति के लिये
पुरस्कृत हुए कितने ही अखाड़े
उधर बन्द हुआ पटमदा
एक हत्या के विरोध में
हल्ला है—नौ करोड़ लैप्स हुए स्वर्णरेखा परियोजना में
ये सारी खबरें हैं जिनसे चकित,
दुखी, नाराज हैं लोग
मगर खबर यह नहीं है कि
गन्दे पानी से बर्त्तन धोते हैं स्कूली बच्चे
डुमुरडीहा में
मुख्यमंत्री जी, और नहीं है कोई रास्ता
बिगड़ा पड़ा है चापाकल
पानी उतर गया है जीवन से
गन्दा पानी पीते हैं बच्चे प्यास जब सताती है
सूख गये हैं तालाब, बहुत नीचे उतर गया है पानी
नहीं है इस गाँव में कोई सरकारी कुआँ

जीने के लिए तरसते हैं बच्चे
नहीं हैं वहाँ कोई ज्ञान की ललक
दोपहर के भोजन की लालसा खींच लाती है उन्हें
स्कूल तक
तैरने की इच्छा में धँसते हैं गंदे पानी में
धोते हैं बरतन
और न जाने ले आते हैं कितने ही जीवनहीन सपने
बिना पानी कैसा जीवन !
बढ़े हुए पेट, धँसी हुई आँखें, गिनने को
पसलियाँ और सूखे पतले पाँव
किस समाजशास्त्र में समायेगा
बच्चों का यह भूगोल ?

8.4.'06

●

हँसती है रंगोली

बनी है रंगोली
लाल-पीले, हरे रंगों में रंगकर
लकड़ी के बुरादों से
आरी से चीरे जाने पर
जब बने थे बुरादे
तो हँसी थी पलंग, कुर्सी और आलमारी
पलंग को अभिमान था
कि लोग होते हैं निश्चिन्त उस पर सोकर
निपटाये जाते हैं कुसी पर बैठकर
जाने कितने जरूरी काम
फाँसी के फरमान भी दिये जाते हैं
उस पर बैठकर
गुरुजी बनाते हैं उनके भविष्य
जो रूई की तरह उड़ते हैं
अब भी आसमानों में
और आलमारी
जाने कैसी पड़ी रहती हैं उसमें
संचिकायें
एक बकरी भगाने के जुर्म में
जो तीन साल से करते हैं प्रतीक्षा
आँखों में बिना नींद के
पानी भी पीते हैं तो सूखते हैं जिनके कंठ
कैदखाने में

हँसती है रंगोली
मनुष्य को मनुष्येतर बनाने में
काम आती है कुर्सी, आलमारी और पलंग भी
पलंग जिसपर निरंकुश नींदें सोती हैं, सियासी एय्याशी,
आलमारी में काँपती है नर-संहार की पीड़ा,
कुर्सी पर लगे होते हैं कत्ल के दाग
अच्छा है कि हम बुरादे हुए
ले जाते हैं रंगों की दुनिया में
कुछ देर के लिये
जो उंगलियाँ बनाती हैं रंगोलियाँ
हम उनमें अंगूठी बनकर
जड़ जाना चाहते हैं।

3.12.2001

●

भोली लड़की

यह जलती रेत
सूखी धार,
अंधकार को कुतरते झुंड के झुंड पक्षी
और इनके बीच
घबड़ायी सी धूप
जैसे ऑपरेशन टेबुल से भागी कोई लड़की
प्यास से सूखता कंठ
और पानी इतना गर्म कि पिया नहीं जाता
महीना के शुरू होते ही
माँगता है बेटा—फीस के रुपये,
स्कूल की टाई
और बेटी
जो सीख रही है वर्णमालायें और उसके साथ
जरूरतों को कहना भी
बच्चों को कहाँ मालूम कि कम तनख्वाह में
जीवन का तापमान ऊपर नहीं चढ़ पाता
कुछ नहीं हो सकता इसके सिवा
कि अपने सपनों को सँभाल लूँ
भोली लड़की की तरह
आँखों की कोरों पर जो आ गये हैं
कीचड़ में लटपट।

24.10.'78

ऋतु-कथा

हर साँझ वसंत की दहलीज पर
दस्तक देती हवा
कुछ पत्तों को रख जाती है
पन्नों पर लिखी हुई कथा
ग्रीष्म भर जलती है
झनकता है वायलिन
चुप्पी गहराती है
हिलती है करोटन की टहनी
गंधभरी नदी सी आँखें लहरती हैं
पुतलियों पर उतरती है बरखा
उँगलियाँ पहनती हैं
एक सहज शरद-क्षण गीत का
कौंधने लगता है वही पहला प्रश्न
जिसका उत्तर देकर भी नहीं दे पाता
वसन्त—
धुआँकर रह गयी जलने से
कोई भींगी लकड़ी।

5.9.'74

रूआँसी है चिड़िया माँ

इस तेज बारिश में
जब बाँस और करोटन के पत्ते
साथ-साथ भींग रहे हों
मुझे उस चिड़िया की याद आई है
जो कल तक जुटी थी अपना घोंसला बनाने के
जुगाड़ में
अनायास उस लाल रिबन वाली लड़की की तरह
आई वह तेज बारिश आज ही
आते ही जिसने उछाल दिया जोर से पत्थर
जाने किसके सिर पर लगा वह,
बहा किसका लहू
और उसको तो फुरसत ही नहीं हँसने से
इस बारिश ने भी कहाँ देखा
टप-टप चूते इस घोंसले में
भींग रही चिड़िया की बच्ची
अपना पंख फैलाये उसको बचाने की
कोशिश में रूआँसी है चिड़ियाँ माँ

4.8.'08

●

किशोरी अमोनकर को गाते हुए देखकर

तुमको पता है किशोरी अमोनकर
कि जिस गीत को गाती हुई
तुम इतनी डूब जाती हो,
इतनी दूर चली जाती हो
अपने आप से
सब कुछ निःस्व कर देने की कामना में
शब्द-शब्द बुन जाती हो तुम
लय की कोई दूरागत नदी
तैर जाती है यहाँ से वहाँ
और बटोरते सीपी-शंख
समुद्र के गर्भ से कगार तक उड़ते चले आते हैं
तुम्हारे स्वर
तुम व्यक्ति नहीं,
दूरगामी वंशी की कठिन रागिनी सी
रंध्र-रंध्र में फैल जाती हो
पानी पर तेल की तरह

एक बात पूछूँ ?
क्या उस गीत को लिखती हुई
मीरा उतना ही डूब गयी होगी ?
उतना ही निःस्व किया होगा
अपने को
उतना ही अलग, उतनी ही दूर
चली गयी होगी
अपने आप से ?

नहीं, अमोनकर नहीं,
मीरा तो भक्ति की कल्लोल
करती गंगा थीं,
उन्हें कब फुरसत थी गीतों
में डूबने की, उससे अलग
या दूर होने की
वे तो गीतों के साथ स्वयं
रचती चली गईं—गीतों से अलग
कहाँ थीं वे ?
तुमने अमोनकर, तुमने
मीरा को डुबोया है
अपने स्वरों में
उनको मूर्त्त किया है अपनी तानों में
उतरती हैं मीरा तुम्हारी लय में
जीवित किया है तुमने मीरा को
शब्दों में !
तुम्हें गाते हुए देखना
वाण-विद्ध हिरनी के सपनों में भागना है
मीरा ने तो शब्दों को बुना था
तुमने तो बुना है मीरा को ही स्वरों में
इतनी अतल होगी क्या कोई नदी
जहाँ से निकलते हैं तुम्हारे
वैरागी ताल
संगीत का जलता ज्योतिपिण्ड बन जाती है
तुम्हारे माथे पर लगी
लाल बिन्दी
'साजन आओ म्हारो देश' गाती हुई
नहीं लगता तुमको कि तुम्हारे
संग-संग गाती हैं मीरा!
उनको बंधन मुक्त करती हुई

उन्हें प्रतिबिम्बित भी करती हो तुम
शब्दों के दर्पण में
एक सवाल और है
अमोनकर !
स्वरों में इतना पिघलना
कहाँ सीखा तुमने
किसने सिखाया तुम्हें
इतना शृंगारी वैराग्य !

27.8.'94

●

आवे कुम्हार के

लहूलुहान हो गई देह
और मन के घाव झेलते असहज
उसने कब चाहा कि उसका रंग महावर सा उखड़ जाये
या धूप सोख ले गंध को
पर जब उसका पूरा घर आ गया सूखा और बाढ़ में एक साथ
भरपेट नहीं खाकर जिसने
कैलेन्डर पर ही देखी अच्छे-कीमती कपड़ों की छापें
और जब भूल गई उसकी माँ पेबन्द टाँकने में ही
क्रोशिया काढ़ना और रह गये
उसकी बहनों के गले ब्याह के बाद भी सूने
जो चन्द्र से चन्द्रग्रहण बना सकती हैं चन्द्रहार नहीं
और जब उसका भाई पूरी नहीं कर पाता एक भी इच्छा
अपनी पत्नी की
कुछ कर भी नहीं सकता अपनी सेहत के लिये
और पिता जिम्मेदारियों को नहीं सँभाल सकने के कारण
करने लगे हैं साधुओं का सत्संग
ओढ़ है लिया गेरुआ वस्त्र
और पति जो अपने आमद से अधिक खर्च करते हैं
अपनी सफेदपोश प्रतिष्ठा के लिये
टूटते ही रहते हैं हरदम
लगता है बिखर जाएगा सब कुछ घर से बाहर तक
हर एक की इच्छा के आगे सँभालना पड़ता है
उसे अपने आपको
समय ने नहीं समझा
उसने कभी अपव्यय नहीं किया खुशबू का

स्थितियों ने तपाया ही उसको
इतने में कुम्हार के
कितने तो आवे लग गये होते !
वह कोई और नहीं, खाना पकाती, बच्चों को प्यार करती
घर देखती, बाहर की चिन्ता करती अपनी ही बहन है।

19.6.'86

●

उदास है अमलतास

वह गुनगुना रहा है एक गीत
अगली उम्मीद के लिये
चौराहे पर नारंगी बेचता हुआ वह
लगातार देख रहा है सामने बच्चों को
मैदान की घास पर क्रिकेट खेलते
आपस में लड़ते और फिर सँभलते भी
उस आदमी को भी देखता है वह
जो कपड़े बदलता है
बाहर जाने के पहले
पानी का नल आस-पास नहीं है कहीं
चार नारंगी खा चुका वह अबतक
चुनरी, दुपट्टा, ओढ़नी की सज-धज देखते हुए
बगल के बगीचे में उदास है अमलतास
सरकते जाते हैं
हारे-थके मकानों के साये
वह या तो नारंगियों के बिकने का
करेगा इन्तजार
या भूख लगने पर खा जाएगा सबको
वापस नहीं ले जाएगा घर
वैसे वह अकेला नहीं है
उसके साथ है उम्मीद
उसको इन्तजार है दिन ढलने का
जब सड़कों पर जल जायेंगी
उजली-उजली बत्तियाँ।

22.4.2002

●

एक भींगी मुस्कुराहट

लड़की थी देवयानी / तेइस वर्ष पहले
अपने रक्त में उंगलियाँ डुबोकर
उसने लिखा था अपना नाम वहाँ
बदलती ऋतुओं से उम्र की टुकड़ियाँ जोड़ती
आज वह कहती है–
दस्तखत करने की यूँ ही–कागज, अखबार,
गत्ते के टुकड़े, टेबुल पर
उसकी आदत है–पुरानी–
उंगलियाँ यूँ ही चलती रहती हैं किसी
स्वेटर बुनते क्रोशिये की तरह / अन्यमनस्क-अनजाने
किसी कविता को पकड़ने में हिलती हुई लगातार
उसने विदा कर दिया जिस लालित्य को
अपने अन्तरंग सहचर को / पूछता है वह यहाँ से जाते हुए
आखिरी बार अपने बाल पर हाथ फेर
भारी कदमों से रुके रिक्शे की ओर बढ़ते
क्या करेगा–ठिठककर जूते झाड़ेगा
और दूर उड़ती पत्ती को देखेगा बार-बार
एक बार चेहरा झुकाकर किसी उबलते
आवेग को घुटककर पलटेगा
किसी सभ्य, आत्मस्थ उजले भविष्य की ओर
बढ़ते दृढ़ युवक की तरह
और एक स्वस्थ विदा लेगा हाथ हिलाकर
एक भींगी मुस्कुराहट के साथ
कोई अस्पष्ट वादा बुदबुदाते हुए / आदत के मुताबिक
पता नहीं वह कौन सी जगह होगी

पर देवयानी का दरवाजा तो हर्गिज नहीं
जहाँ दिन बढ़ता जाएगा उसको लिये
और काली सड़क पर ढेर सा करियाया खून
पड़ा होगा अनदेखा / जिसमें रेंगता, जिसको पोंछता
देवयानी का नाम धीरे-धीरे अदृश्य हो रहा होगा।

3.7.'89

●

हिरन और मछली

मेरी थीसिस के पन्ने पर
'अ', 'छ' बनकर लिखा है
और ढरकी है स्याही किताबों पर
मेजपोश जगह-जगह ब्लेड से कटा है
कितने ही कार्टून बने पड़े हैं मेरी डायरी
और लेटरपैड के पन्नों पर
कितने ही चित्रों की आँखें नये सिरे से बनी हैं
कहीं नाक पर निशान हैं पिन के
मेरी कविताओं पर लिख दी गई हैं क ख ग की वर्णमालायें
जिनसे फूटी पड़ती है तुतली, मीठी, सुनहली धूप
जिसकी गरमी में मेरी इच्छाओं की फसल पकती है
कहीं लाल स्याही में
हिन्दी में अंग्रेजी की तरह लिखा है 'मुकुल'
और कहीं कागज को फाड़ती
टूटने से थोड़ी बची रह गई नींव
खोलती है 'चेतना' का भेद
जो मेरे पूछने पर बार-बार
अपनी उँगलियों में लगी हरी स्याही छिपाती है
तभी मुझे याद आता है
एक हिरन
एक मछली
निकलते ही देहरी से राह रोकता है हिरन
और पकड़ते ही बाँह फिसलती है मछली
सचमुच कितना पसन्द है मुझे
इसकी कुलाँचे और उसका फिसलना—
मेरे सामने टँगे चित्र।

5.6.'70

●

तुम्हारी मिट्टी

तुमको तुमसे काट दिया गया है
हमेशा चलती रहती है
तुमको तुम्हारी मिट्टी से काट देने की साजिश
जबकि मिट्टी की जड़ों तक पहुँचे हाथ
तुम्हारे ही हैं
तुम्हारे रुखड़े कपोल, ढीली पसलियाँ, त्वचा साँवली
चढ़ी है तुम पर जमाने की गर्द
पर्त्त-दर-पर्त्त
किसी गलती की तरह भूल जाना चाहता है तुमको यह देश
और कुछ सुविधाफरोश
चढ़ने लगे हैं सीढ़ियाँ
जाओ, बैठ जाओ धूप में
व्यवस्था की इन मरी गुंजलकों से निकलकर
जानती हूँ मैं इस सीली हुई झोपड़ी
और बदहाल जिन्दगी से निकलकर
नहीं घुस सकोगे तुम सामने की धूप में
तुम्हारा शाप लगे—पागल सी दौड़ती हुई
बदहवास व्यवस्था जब पहुँचे तुम्हारे सामने
तुम पहचानो नहीं, ऊपर से नीचे तक
बदल डालो।

24.9.'90

बंजर में बीज

बँसवट में चिड़ियों के गीत की जगह
अब चीखती है रात
दरवाजे पर बजती है पलटते पाँवों की आहट
रास्ते दौड़ रहे हैं सूखी पत्तियों वाले पेड़ों को
लालटेन की तरह उठाये
दिन के पैरों में फटी है बिवाई
आँख का कीचड़ पोछते हुए जगता है वह
कोई जहाज टूटता नहीं उसकी
पसलियों से टकराकर
जिसका गल रहा मलबा बाहर आ रहा हो
उपला-उपलाकर
लोग जहाँ खड़े हैं वह न तो यात्रारम्भ है
न यात्रान्त
आँखों से सन्देहों के धब्बे हटाकर
कोई तो बोये बंजर में बीज
अंधकार में ढरके खून के निशान
जिनसे घुट रहा है दम
मृत्यु से भी अधिक भयावह
मृत्यु से भी।

10.3.'93

●

दियारे से शहर तक

नदी-तट पर उगने वाले
सरपत की तरह
बहुत दुबली-पतली है लक्ष्मी
कुछ-कुछ तिलकते उसके केश
ढँके रहते हैं क्वाँरे आँचल से
सबसे बड़ी चीज हैं सपने—लक्ष्मी के जीवन में
सपने देखा करती है दिन में भी वह
कागज का छोटा-मोटा
टेढ़ा-मेढ़ा टुकड़ा—जो भी उसके हाथ आता है
कूड़े के ढेर पर मिली एक पेन्सिल
संसार की किस भाषा की लिपि में
पता नहीं अपने सपने उतारा करती है
लक्ष्मी
मालूम है टोला के सब लोगों को
क्यों-क्या सपनाती है वह
मगर किसी को यह नहीं मालूम
कि अपने कन्धे पर बारूद को महसूस करती है
वह इन दिनों
इस दियारे से शहर तक
जाने वाले रास्ते पर चलने वाली हर लड़की
उसको लगती है
अपने जैसी
पेट से आँख और
आँख से पूरी देह तक जलती हुई।

15.8.'94

●

आँचल के रंग

उसकी गंध से भरे
अपने कमरे में
जब-जब होती है वह
एक सपना सा होता है उसकी आँखों में
गालों पर छा जाते हैं आँचल के सारे रंग
वेणु–सम्मोहन सा जगता है स्पर्श
और देखते ही देखते
शिवाला बन जाता है मन
जुड़ता है एक पल से दूसरा पल
और सारे जुड़े हुए पल
उड़ने लगते हैं आसमान में
पतंग की तरह।

25.2.'82

●

कोई भी कविता

दुख सहने की शक्ति
तुमने ही दी मुझको
क्योंकि तुमने लिखी कविता
टाँके तुमने क्षणों के मोटिफ्स
समय के कुरते पर
पर घास छीलती, पत्ते चुनती, गन्ना चूसती
गुलाबी जब-जब मिलती है
कहती है—उसकी उम्र से दुगुना बड़ा उसका घरवाला
उसको प्यार करता है—
कि बनी रहे उसकी हँसने की आदत
वह हँस सकता है
पर नहीं सह पाता कोई भी दुख
क्योंकि उसकी समझ में नहीं आती
कोई भी कविता

16.10.'96

अपना अन्धकार

सामने ढलान पर लटक जाता है
सूरज रोज उगकर
हर दिन की तरह समा जाता है नया दिन
अपरिचित पथों के स्याह युद्ध-मुख में
कृतज्ञता का भार वहनकर भी
शेष रहता है अभिशाप का प्रसंग
विषण्ण चुप्पियाँ जब झुकी पड़ती हैं
तो कितने ही लोग
बगल से गुजर जाते हैं
ऊँची मशालें जलाये
जिनकी रोशनी में
और घना हो उठता है
अपना अन्धकार।

18.11.'90

चीजों की तरह

कई-कई जरूरी और गैर जरूरी
चीजों की तरह
गुम हो जाती हैं घटनायें, नींद और पहचान
फालतू समय की दिलचस्प परेशानियाँ
आस-पास होती हैं
और काफी होती हैं जीने के लिये–
चाय की चुस्कियाँ या ताजा अखबार
एक सर्द निगाह रुकी रह जाती है
टल जाता है मौसम के साफ होने का अनुमान
अब कभी साफ नहीं होगा यह मौसम
धुंध में तैरती बेपहचान लाश की तरह
नहीं मिलेगा मुझको मेरा आकाश
प्रवास का यह दुख देश में रहकर भी
नहीं झेला जायगा मुझसे
सचमुच कभी खत्म नहीं होगा
मेरा प्रवास।

11.9.'99

●

नई गंध

बाँध लिया जूड़े में
एक दिन और
टाँक ली आँचल में एक और गंध
रंग को बिखर जाने दिया / स्पर्श को पिघलने
बिखरने और पिघलने का यह क्रम
लगातार.....
ऐसा क्यों है लेकिन
कि पहचान बना लेती है नयी गंध
और पुरानी लौटने लगती है उल्टे पाँव
फिर भी पूरी की पूरी / निर्वासित
कहाँ होती है वह।

24.10.'89

●

शायद

कैसा अजीब होता है
कोई-कोई दिन
कि हम दोनों देखते ही रह जाते हैं
कभी अपने को, कभी एक दूसरे को
या फिर हवा से डोलते पर्दे में
किसी के होने के एहसास को
हमारे शब्द धरती पर पहली बार पाँव रखने वाले
बच्चे की तरह डगमगाते हैं
मन में रहती हैं हजार-हजार बातें
पर होंठ खुलते ही पथरा जाते हैं
हमारा यह चुप रहना
कितनी-कितनी बातों को
नया अर्थ देता है
तुम्हारे कुछ कहने के जवाब में
याद आता है अँधेरे के दरवाजे पर
सूरज का दस्तक देना।

24.4.'86

●

स्वीकार

बात हर बार बदल जाती है
तुम्हारे अस्वीकारने की
सारी-सारी संभावनायें लिये
अस्वीकार नहीं हो पाता
पिछली लड़ी गई लड़ाइयाँ
नई लड़ाइयों की भूमिका बन जाती है
और विवशता एक नया चेहरा रचती है
इन सारे अस्वीकारों के बीच
फिर भूमिगत आग धरती की ठोस सतहों पर आकर
और गर्म हो जाती है
स्वीकार नया खंड-खंड चेहरा हो जाता है।

19.12.'79

●

दौड़ लगाता बच्चा

मेमने की तरह उछलते
दौड़ लगाता है बच्चा
सड़क के किनारे-किनारे
बूढ़ा बाबा उसके पीछे-पीछे जाता है
अपने कन्धों को सहलाता
सड़कों पर बुनी जा रही हैं–
बच्चा के पैरों की छोटी-छोटी छापें–
बूढ़ा उन छापों को अपनी साँसों के सिरे पर उठाता है
अपनी आँखों में भरता
और रोशनी के अजस्र झरनों को
फूटता हुआ देखता है वह
अपने भविष्य के अँधेरे
खुरचते हुए।

24.9.'95

●

उन दिनों गाँव में

इतने लम्बे समय को पारकर
बचपन में जाना
पहाड़ लाँघने के बराबर है
पर बचपन है कि याद आता ही है
जाते-जाते या जाने के बाद
बीत रहे थे दिन बिना क्रीम-पावडर के
स्कूल से आकर पसीना सुखाने में
लग जाते थे ढेर समय
गाँव में तब न कोई दूकान थी
न शहर से आनेवाला कोई
फिर एक दिन आम के महीने में
आया था 'बकोलिया'
ढेर सारे स्नो-पावडर, कंघी-रिबन, अलता
और सुगंधों भरी तेल की शीशियाँ लेकर
कुछ जो चमचमाया वह आइना था
उसके पास
तब उसके पास देखा था पहली बार
अफगान स्नो, जेसोर की कंघी और
प्लास्टिक के कर्णफूल
ध्यान ही तब कहाँ दिया था माँ ने
कि होनी चाहिये ये चीजें बेटी के साथ
तब गाछी में ही आम के महीने में

सुहानी ने खरीदा था वह कर्णफूल
फिर माँ ने खरीदा अफगान स्नो
अगले बरस
तब कहाँ होते थे क्रीम-पावडर या क्लिप
इतनी तरह के
और शैम्पू का तो नाम ही नहीं सुना था किसी ने
मिट्टी से धोती थीं बालों को गरीब बच्चियाँ और औरतें
देह में लगनेवाले या कपड़े धोनेवाले साबुन से
धुलते थे केश
सुहानी जैसे घरों में
अब सोचती है सुहानी–
अब न तो माँ हैं, न आम की गाछी
और न 'बकोलिया'
तब प्लास्टिक का कर्णफूल भी कितना कीमती था
और कितना सुन्दर!
'बकोलिया' के आते ही
घेरकर बैठ जाती थीं बच्चियाँ और औरतें
उनमें साड़ी का उल्टा पल्ला लेना सीख रही
लड़कियों के साथ
गोबर उठानेवाली और 'घसगढ़नी' भी होती थी
आलता पसंद करते चमकती थीं
उनकी आँखें
और बच्चियों के हाथों में
लहराने लगते थे
लाल-लाल रिबन।

25.6.08

●

साफ-सुन्दर दुनियाँ

जिस साफ और सुन्दर दुनिया में रहते हैं हम
कह तो नहीं सकते
कि यह हमारे कारण सुन्दर है
मेरा भी घर सुन्दर है
लक्ष्मी के कारण
जो झाड़ू लगाती है सुबह आकर,
पोछा करती है
कोने में रखे अखबार पर रख आती है
बासी अखबार
जिस दिन वह नहीं रखती
पन्ने उड़ते रहते हैं घर में यहाँ-वहाँ
जिस दिन नहीं आती वह
गंदा रहता है घर, जूतों-चप्पलों की धूल
दीखती है यहाँ-वहाँ
एक पर एक गिरे होते हैं सोफे के कुशन
बेतरतीब,
बेजगह होती हैं कुर्सियाँ बेंत की
तुड़ा-मुड़ा रहता है सोफों के बीच
बिछा कालीन
गड्ड-मड्ड लगते हैं उस पर छपे फूल
और भी बहुत कुछ—उनमें एक यह भी कि
खुलते नहीं बालकनी की ओर बंद शीशों के

दरवाजे
सिर्फ इतना कहते हैं हम–
'आज डस्टिंग नहीं हुआ'
घर का चेहरा इसलिये रहा बिखरा हुआ
अब यदि लक्ष्मी आती है
खूब दूध देकर चाय पीती है
तो क्यों नहीं पिये?
सचमुच यह टी.वी., सोफे-कुशन,
परदे-कालीन घर की शोभा नहीं
शोभा है लक्ष्मी
जिसके हाथ लगने से चमकता है घर
उसका श्रम ही रचा होता है घर में!

15.7.08

●

पिता को खत

देर से कुर्सी पर बैठे-बैठे झपकी आ जाए
या खिड़की से आ रही हवा का झोंका
दबोच ले मुझको
लिखना है पिता को खत
कि आजकल चल रही है बड़ी परेशानी
नौकरी में
घर से इतनी दूर चला आया
आता रहता है ख्याल एक दूसरे का
और यहाँ अखबारों की तमाम कतरनों के बीच
खोज रहा हूँ अपने को
जगह-जगह लाल रंगों से रँगे घेरों में
गाँव से आ रहा था तो माँ को खाँसी थी
बहन ने कहा था 'काव्य चंद्रिका' लाने
दसवीं की तैयारी में है वह
सोचा था लग जाएगी नौकरी
तो मदद करूँगा फाइनल की फीस भरने में
छोटा भाई था जिद पर तीन दिनों से
कभी खाया नहीं था उसको खिलाये बिना
पर उस दिन दिखा भी नहीं वह मुझको
आते समय
निभा नहीं पाया मैं बड़ा होने का कुछ भी
पिता का दुख, न माँ की बीमारी

बहन को छोड़ आता स्कूल तक—वह भी नहीं
बागी हो गया छोटा भाई
तो बड़ा होकर क्या करूँगा मैं
एक नम्बर तो दिया था मैंने फुटपाथ पर
अखबार की दूकान का
पर पिता भूल गये शायद
कहीं जुगाकर रखा होगा कागज का टुकड़ा
नहीं आती चिट्ठी भी
न होगा तो कल से पकड़ लूँगा ट्यूशन ही
पर बच्चों को पढ़ाऊँगा कैसे ई.वी.एस., संस्कृत.....
इस पर तो सोचा ही नहीं।

15.7.08

●

सब कुछ

माँ जहाँ धरती है कलश,
पूरती है चौक,
बिछाती है आसनी
वहीं छत से टूटकर
गिरा है जाला
झरे हैं प्लास्टर दीवारों के
भाभी नैहर से आई हैं
नैहर के बहाने शहर से
अभी-अभी धुला है ड्राईक्लीनर में
उनका नारंगी कार्डिगन
भाभी छूती नहीं झाड़ू,
बुहारती नहीं घर
गाँव में ड्राईक्लीनर नहीं है
और उनका औसत परिवार
धुला नहीं सकता शहर से कार्डिगन
पर भाभी को क्या मालूम कि सास की
सफाई से ही हरदम साफ नहीं रहेगा घर
वे जब झाड़ू पकड़ेंगी,
फेकेंगी बुहारन
तो उनके छोटे घर में पड़ेंगे नहीं जाले
कलश, चौक, आसनी
सब कुछ चमकेंगे—
और यह छोटा घर भी।

2.1.'79

●

कोने में पड़ी किताब

ठीक ही होगा टेनीसन
जब ऑटम फील्ड्स की ओर देखते,
देखते वसंत लदे खेत को
छलछला आई थीं उसकी आँखें
पहली बार इस कविता को पढ़ते हुए
किसी स्वर्गिक निराशा में
छूट गयी थी किताब हाथ से
हँसी में
पर आज छलछला आयी हैं
मेरी आँखें
सोचती हूँ
देखूँ वसन्त-लदे खेत को
और अपनी हथेली को कोमलतम कर
कोने में पड़ी उस किताब को
उठाऊँ, पोंछकर रख दूँ
अपने सिरहाने।

2.1.'90

●

धन्यवाद

तुम्हें बहुत-बहुत धन्यवाद
ओ बादल
कि आज तुम मेरी गली से गुजरे
तुम्हें भी धन्यवाद ओ पतंग उड़ाते हाथों वाले बच्चे
कि तुमने मेरे आकाश को उजली हवाओं से भर दिया
धन्यवाद तुम्हें भी सीताराम
मिड्ल स्कूल में साथ थे हम
आज डाकिया बनकर किसी की राखी किसी का
सिन्दूर बाँट रहे हो तुम
किसी को नौकरी किसी प्रतीक्षारत हाथ में
मनिआर्डर थमा आते हो तुम
तुम जानते हो कैसे धीरे-धीरे
इस जंगल के बोझ से कुबड़े हुए तुम्हारे अहं
चले जाना चाहते हैं तुम्हारी देह से निकलकर
मैं जानती हूँ कोसों दूर उजाले को अपनी आँखों में भरते हुए
तुम अपने अस्तित्व के हिस्से को
खींचकर निकाल रहे हो
वे जड़ें नहीं टूटती हैं, पर टूटेंगी, टूटेंगी वे
और तुम्हें तुम्हारे उजाले में छोड़ देंगी
तुम्हें दीखने लगेंगे दौड़ते हँसते जाते बच्चे
सूरज की ओर
तुम्हें धन्यवाद ओ हँसते बच्चों
कि तुमने मेरे अन्तरतम को गीतों से भर दिया
जाने कितने सीताराम के अंधेरे में उजाले के
हस्ताक्षर कर दिये।

15.4.'90

●

होता है जिसकी हमारे समय में खासी निन्दा की जाती है। इन कविताओं में गाँव के कुछ अछूते-टटके बिम्ब हैं, गाँव की स्त्रियों-बच्चों और मजदूरों के संघर्ष-चित्र भी हैं। पीने का पानी ढोती बेटियाँ, सुविधाओं से वंचित बच्चे, रोटी-कपड़े के लिए खटते मजदूर और ऊपर से सरकारी योजनाओं का खोखलापन। यही है वह जीवन-धारा जिससे पैदा होते हैं विचार। यही है वह साधारणजन की धड़कन जिसे जनवाद के रूप में जाना जाता है। क्रांतिकारी विचारों से नहीं बनती कविता। जीवन से ही पैदा होते हैं क्रांतिकारी विचार। कवयित्री द्वारा लिखे जाने के कारण इन कविताओं में स्त्री के प्रति सह अनुभूति स्वाभाविक है और इसीलिए इनमें बंधनमुक्ति के लिए छटपटाती स्त्री के बिम्ब खासतौर से उभरते हैं। कवयित्री जानती है कि इस वस्तुजगत में भावना का बचा रहना कितना कठिन है फिर भी प्रशंसनीय है कि उसके भीतर भावना की नमी बची है। मुझे विश्वास है, इस संग्रह की कविताएँ सहृदय पाठकों को आकर्षित करेंगी।

—विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

शान्ति सुमन

जन्म : 15 सितम्बर 1942, उत्तर बिहार के सहर्षा जिला के कासीमपुर गाँव में।

कृतियाँ :
आठ नवगीत एवं जनवादी गीत-संग्रह।
'समय चेतावनी नहीं देता' नामक कविताओं का एक सह संकलन।
एक उपन्यास– 'जल झुका हिरन'।
एक आलोचनात्मक पुस्तक– 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य'।
पाँच पत्रिकाओं का सम्पादन।
ग्यारह सम्मानों से सम्मानित एवं पुरस्कृत।

सम्पर्क : ईशान' मीठनपुरा, क्लब रोड,
(पी. सी. गली) रमना,
मुजफ्फरपुर- 842002

दूरभाष– 0621 2270895
मो०– 9430917356

किताब पब्लिकेशन

ISBN 978-93-80029-15-3